वार्षिक रु. १६०, मूल्य रु. १७

ISSN 2582-0656

विवेक ज्योति

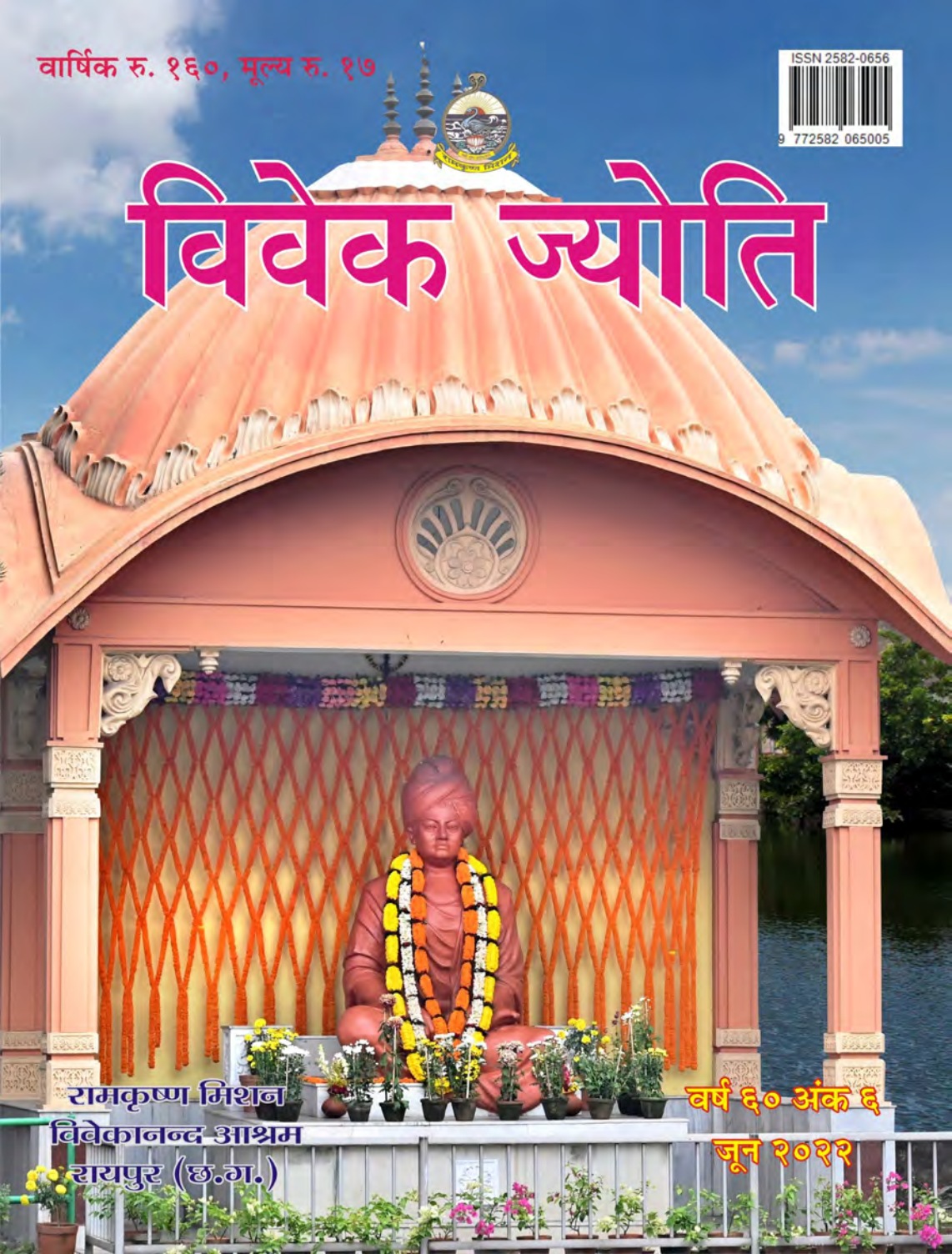

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ६० अंक ६
जून २०२२

* आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च *

वर्ष ६०

अंक ६

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

ज्येष्ठ, सम्वत् २०७९

जून २०२२

अनुक्रमणिका

* भगवान श्रीजगन्नाथपुरी की रथयात्रा (स्वामी तन्निष्ठानन्द) २४८
* (बच्चों का आंगन) ईहा दीक्षित (स्वामी अनिलयानन्द) २५९
* सब दुखों की औषधि : जप और प्रार्थना (स्वामी सत्यरूपानन्द) २६१
* स्वामी विवेकानन्द के अनुज भूपेन्द्रनाथ दत्त : एक देशभक्त, विद्वान और क्रान्तिकारी (विनायक लोहानी) २६२
* (युवा प्रांगण) युवाशक्ति चुनौतियों का सामना कैसे करे? (स्वामी गुणदानन्द) २७४
* (कविता) द्वारकानाथ (सदाराम सिन्हा 'स्नेही') २७८
* (कविता) विश्ववन्द्य श्रीरामकृष्ण जय (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा) २७८

शृंखलाएँ

मंगलाचरण (स्तोत्र) २४५
पुरखों की थाती २४५
सम्पादकीय २४६
प्रश्नोपनिषद् २६०
सारगाछी की स्मृतियाँ २६९
रामराज्य का स्वरूप २७१
आध्यात्मिक जिज्ञासा २७६
गीतातत्त्व-चिन्तन २७९
श्रीरामकृष्ण-गीता २८१
साधुओं के पावन प्रसंग २८२
समाचार और सूचनाएँ २८८

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

***विवेक-ज्योति* दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५** (फोन करने का समय केवल सुबह १० से १२)
ई-मेल : **vivekjyotirkmraipur@gmail.com,** वेबसाइट : ***www.rkmraipur.org***
आश्रम कार्यालय : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९ (समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

ISSN 2582-0656

विवेक-ज्योति के सदस्य कैसे बनें

भारत में	वार्षिक	५ वर्षों के लिए	१० वर्षों के लिए
एक प्रति १७/–	१६०/-	८००/-	१६००/-
विदेशों में (हवाई डाक से)	५० यू.एस. डॉलर	२५० यू.एस. डॉलर	
संस्थाओं के लिये	२००/–	१०००/–	

* सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – **'रामकृष्ण मिशन'** (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाकर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.) ४९२००१ के नाम स्पीड पोस्ट से भेज दें अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा करायें :

बैंक का नाम : सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
अकाउण्ट का नाम : रामकृष्ण मिशन, रायपुर
शाखा का नाम : रायपुर (छत्तीसगढ़)
अकाउण्ट नम्बर : 1 3 8 5 1 1 6 1 2 4
IFSC : CBIN0280804

* कृपया सदस्यता राशि जमा करने के बाद इसकी सूचना हमें तुरन्त **फोन, मोबाईल, एस.एम.एस., व्हाट्सएप, ई-मेल** अथवा **स्कैन द्वारा अपना नाम, पूरा पता, पिन कोड नं.** के साथ भेजें।
* विवेक-ज्योति पत्रिका के सदस्या किसी भी माह से बन सकते हैं।
* पत्रिका को निरन्तर चालू रखने हेतु अपनी सदस्यता की अवधि पूर्ण होने के पूर्व ही नवीनीकरण करा लें।
* विवेक-ज्योति कार्यालय से प्रतिमाह सभी सदस्यों को एक साथ पत्रिका प्रेषित की जाती है। डाक की अनियमियता के कारण कई बार पत्रिका सदस्यों को नहीं मिलती है, अत: पत्रिका प्राप्त न होने पर अपने समीप के डाक विभाग से सम्पर्क एवं शिकायत करें। इससे कई सदस्यों को पत्रिका मिलने लगी है। पत्रिका न मिलने की शिकायत माह के अंत में ही करें। अंक उपलब्ध होने पर ही पुन: प्रेषित किया जायेगा।
* सदस्यता, एजेन्सी, विज्ञापन एवं अन्य विषयों की जानकारी के लिए 'व्यस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय' को लिखें।

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन नि:शुल्क पढ़ें : www.rkmraipur.org

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण पृष्ठ पर स्वामीजी की मूर्ति रामकृष्ण मिशन, कसुन्दीया, हावड़ा, पश्चिम बंगाल की है। इस आश्रम की स्थापना रामकृष्ण देव के अन्तरंग पार्षद श्रीमत् स्वामी शिवानन्द जी महाराज ने १९१६ ई. में की थी। इस आश्रम का विलय रामकृष्ण मठ एवं मिशन, बेलूड़ मठ में १० अगस्त, २०१९ को हुआ।

जून माह के जयन्ती और त्यौहार

११, २४ एकादशी

विवेक-ज्योति कोष/स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री लक्ष्मीनिवास झुनझुनवाला, भारतीय जनकल्याण निधि, सेक्टर-१, नोएडा	१,००,०००/-

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !

आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।

इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी

भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर' !

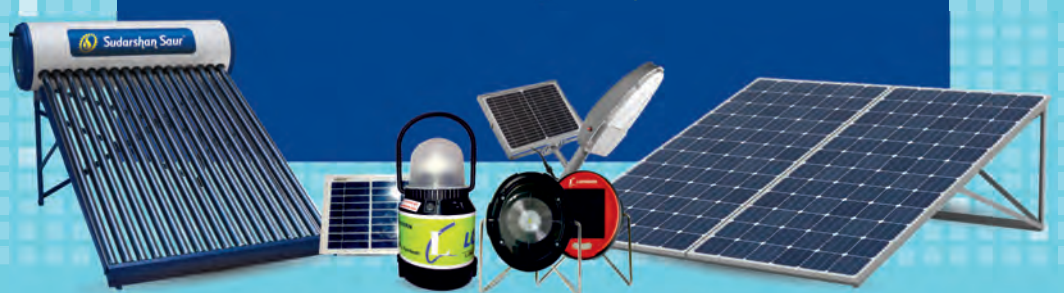

सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए

सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए

सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए

घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त

समझदारी की सोच!

३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!

आजीवन सेवा — लाखों संतुष्ट ग्राहक — विस्तृत डीलर नेटवर्क

Sudarshan Saur®

www.sudarshansaur.com | Toll Free 1800 233 4545 | E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ६० **जून २०२२** **अंक ६**

श्रीगंगा-स्तोत्रम्

देवि सुरेश्वरि भगवति गंगे
त्रिभुवनतारिणि विमलतरंगे।
शङ्करमौलिनिवासिनि विमले
मम मतिरास्तां तव पदकमले।।

– हे देवेश्वरि ! हे त्रिभुवनतारिणी भगवति गंगे ! हे निर्मल तरंगमयी शिव के मस्तक पर विहार करनेवाली देवि गंगे ! आपके चरण-कमलों में मेरी सुमति हो।

भागीरथि सुखदायिनि मातः
तव जलमहिमा निगमे ख्यातः।
नाहं जाने तव महिमानं
त्राहि कृपामयि मामज्ञानम्।।

– हे भागीरथि ! हे सुखदायिनी माँ ! आपके जल की महिमा वेदादि में प्रसिद्ध है। मैं आपकी महिमा नहीं जानता। हे कृपामयि ! मुझ अज्ञानी की रक्षा करो।

पुरखों की थाती

ऐश्वर्यस्य विभूषणं सुजनता शौर्यस्य वाक्संयमः
ज्ञानस्योपशमः श्रुतस्य विनयो वित्तस्य पात्रे व्ययः।
अक्रोधः तपसः क्षमा प्रभवितुः धर्मस्य निर्व्य जता
सर्वेषामपि सर्वकारणमिदं शीलं परं भूषणम्।।७६२।।
(नीति-शतकम्)

– समृद्धि का आभूषण 'सज्जनता', वीरता का आभूषण 'वाणी-संयम', ज्ञान का आभूषण 'शान्ति', शास्त्रज्ञ का आभूषण 'विनय', धन का आभूषण 'सत्पात्र में व्यय', तपस्या का आभूषण 'क्रोध-राहित्य', प्रभुत्व का आभूषण 'क्षमा' और धर्म का आभूषण 'निष्कपटता' है, परन्तु समस्त गुणों का मूल 'शील' या 'सदाचार' ही सर्वश्रेष्ठ आभूषण है।

ऐश्वर्यमदमत्तानां क्षुधितानां च कामिनाम्।
अहंकार-विमूढानां विवेको नैव जायते।।७६३।।
(नारदपु.)

– जो लोग ऐश्वर्य से मतवाले हो रहे हैं, जो लोग भूख से पीड़ित हैं, जो लोग कामनाओं से ग्रस्त हैं और जिनका चित्त अहंकार से आच्छन्न हो गया है, ऐसे लोगों में विवेक उत्पन्न नहीं होता।

सम्पादकीय

संयम के बिना सुख नहीं

मानव अनादि काल से जीवन में सुख का अनुभव करने के लिए प्रयत्नशील है, किन्तु सुख-सामग्री प्राप्त होने पर भी सुखी नहीं है, यह कैसी विडम्बना है ! लोग जीवन में अहर्निश कठिन परिश्रम कर रहे हैं। क्यों? क्योंकि वे यह आशा करते हैं कि बाद में उस अर्जित धन से उन्हें कुछ भौतिक सुविधाएँ मिलेंगी और उन सुविधाओं से वे सुखी होंगे। किन्तु उनके द्वारा वांछित सुविधाएँ प्राप्त होने पर भी वे सुख का बोध नहीं करते। कोई-न-कोई नई समस्याएँ आ जाती हैं और उन्हें सुखानुभूति नहीं होती है। तब सुखी कैसे होगा व्यक्ति? मनुष्य क्या करे? इससे सम्बन्धित एक सद्य: घटना का उल्लेख प्रासंगिक होगा।

हमारे पूज्य बड़े महाराज स्वामी सत्यरूपानन्द जी के पास उनके ब्रह्मलीन होने के एक महीने पहले एक दिन मैं रात में बैठा हुआ था। उस दिन शाम को कोई एक सज्जन उनसे मिलने आये थे और उन्होंने अपनी व्यथा सुनायी थी। पूज्य महाराज ने कहा – रमेश ! इस विषय पर एक लेख लिख दो, लोग सुख की सुविधा और सामग्री जुटाते हैं, लेकिन सुख अनुभव करने के लिए जिस वस्तु की आवश्यकता है, वह नहीं करते, जिसमें पैसे नहीं लगते, शारीरिक श्रम नहीं लगता।

मैंने पूछा – महाराज ! वह क्या है?

महाराज ने कहा – वह है संयम। तुम इस विषय पर 'विवेक-ज्योति' के आगामी अंक में एक लेख लिख दो।

मैंने कहा – ठीक है महाराज।

महाराज ने एक शब्द में समाधान कर दिया।

ऋषि-मुनि, आचार्य सभी कहते हैं। बिना संयमित जीवन के व्यक्ति सुखी नहीं हो सकता। बिना संयम के जीवन संतुलित नहीं होता। संतुलित मन:स्थिति में ही लौकिक सुखानुभव और इन्द्रिय-संयम से पारलौकिक सुखानुभव होता है।

संयम शब्द की व्युत्पत्ति है सम्+यम। अर्थात् सम्यक् रूप से नियन्त्रण करना। किसको नियन्त्रण करना? अपनी सभी इन्द्रियों को नियन्त्रित करना। इसीलिये ऋषि पतंजलि ने योग-साधकों हेतु साधनपाद में यम-नियम का उल्लेख किया – **यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधयोऽष्टावङ्गानि।।२/२९।।** अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि, ये आठ योग के अंग हैं।

संयम अर्थात् अपनी इन्द्रियों पर संयम। अपनी पंचकर्मेन्द्रियों, पाँच ज्ञानेन्द्रियों और मन पर संयम अत्यन्त आवश्यक है। इन पर संयम के बिना व्यक्ति विक्षिप्त सदृश कुछ भी बोलता है, कहीं भी दौड़ता है और कुछ भी करता है। पागल सब कुछ रहते हुए भी मानसिक विक्षिप्तता के कारण दुखी रहता है। धनी भी पागल होने पर भिखारी बन जाता है। स्वस्थ व्यक्ति भी अनियन्त्रित जीवन-शैली के कारण रोगी होकर कष्ट भोगता है। ये सब असंयम का परिणाम ही है कि व्यक्ति धनार्जन और इन्द्रियलोलुपता में अपनी अनियमित दिनचर्या का शिकार होकर दुख भोगता है।

शान्ति और निर्वाण प्राप्ति के इच्छुक लोगों के लिये भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं 'मन:संयम्य मच्चित्तो'। अर्थात् मन का संयम कर मुझमें लगाओ। श्रीरामचरितमानस में मानसिक रोगों के नाश के लिये जब गरुड़जी ने कागभुसुंडीजी से समाधान पूछा, तब कागभुसंडीजी ने कहा था –

राम कृपाँ नासहिं सब रोगा।
जौं एहि भाँति बनै संजोगा।।
सदगुर बैद बचन बिस्वासा।
संजम यह न बिषय कै आसा।। ७/१२१/५-६

कागभुसुंडीजी ने बहुत कुछ कहने के बाद कहा कि रामकृपा से ही सभी रोगों का नाश होता है। सद्गुरु रूपी वैद्य पर विश्वास हो और यह संयम हो कि विषयों की कोई आशा मन में न रहे। सन्त रविदास जी ने पंचविकारों के त्याग का उपदेश दिया –

सत सन्तोष अरु सदाचार जीवन को आधार।
रविदास भये नर देव ते जिन तिआगे पंचबिकार।।

– सत्य, सन्तोष और सदाचार जीवन के आधार हैं, वे लोग मानव से देवता हो गये, जिन्होंने पंचविकारों का त्याग कर दिया।

हम दैनन्दिन जीवन में देखते भी हैं कि जो सत्यवादी नहीं हैं, आज भी समाज उन पर विश्वास नहीं करता और उनकी बातों को अस्वीकार कर देता है। जिसके जीवन में सन्तोष नहीं है, वह प्राप्त सुख-सुविधाओं का लाभ न उठाकर व्यग्र होकर इधर-उधर तिकड़म कर धनार्जन का प्रयास करता है और बाद में सीबीआई के जाँच में फँसकर जेल की सींखचों में अपने प्रारब्ध को कोसता रहता है। लालची व्यक्ति अपने पुरुषार्थ और क्षमता के अभाव में दूसरे की सम्पत्ति का अपहरण करने का प्रयास करता है और इस प्रयास में कई अपराध कर दुख का भागी बनता है। वाणी पर संयम नहीं होने से घर-परिवार-समाज में विवाद और झगड़े होते हैं। मन पर संयम नहीं होने से कितने प्रकार के अपराध होते हैं। सभी अपराधों के मूल में इन्द्रिय संयम का अभाव ही है। संस्कृत सुभाषित में कहा गया –

कुरंग मातंग पतंग भृंग मीना हताः पंचभिरेव पंच।
एकः प्रमादी स कथं न हन्यते यः सेवते पंचभिरेव पंच।।

कुरंग, गज, पतंग, भ्रमर और मछली ये सभी मात्र एक ही विषयासक्ति के कारण मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं, तो पाँच विषयों के सेवन करनेवाले मनुष्य का क्या होगा?

अतः अपनी कर्मेन्द्रियों, ज्ञानेन्द्रियों को सदा संयमित करने का प्रयास करें, तभी जीवन में सुख का अनुभव कर सकेंगे, अन्यथा कोई भी लौकिक सुविधाएँ आपको सुखी नहीं कर सकती हैं।

इसीलिये समाज में बड़े-बड़े धनी, कलाकार, प्रतिभाशाली, उच्च अधिकारी और सम्मानित लोग सारी सम्पत्ति-सम्मान रहते हुए भी आत्महत्या कर लेते हैं। क्योंकि उन्हें अपनी इस भावना पर संयम नहीं था। जितने प्रकार के लूट-खसोट, अनाचार, भ्रष्टाचार हैं, सब लालच और अधम भावनाओं के संयम के अभाव में हो रहे हैं। इन पर संयम करना, व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन में शान्ति और सुखी होने के लिये, परिवार और समाज में सद्भाव के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

आज समाज की अवस्था उस व्यक्ति जैसी है, जो दिनभर कठोर श्रम से पैसे कमाता है, लेकिन जब शाम को उसका स्वामी उसे मजदूरी देता है, तो वह दो दुकानों पर कुछ खाता-पीता है और शेष सारे पैसे अपनी फटी जेब में रख देता है। उसके सारे पैसे रास्तें में गिर जाते हैं। वह दूसरे से उधार लेकर खाता है। वह प्रतिदिन ऐसा ही करता है। उस पर बहुत ऋण हो जाता है। एक दिन उसके एक मित्र ने कहा, तुम इतने पैसे कमाते हो, वे सब कहाँ चले जाते हैं कि प्रतिदिन उधार माँगते हो और पुराना पैसा देते नहीं। तब उसने अपनी सारी घटना बताई कि मैं पैसे इसी जेब में प्रतिदिन डालता हूँ, किन्तु पता नहीं जब दुकान पर सामान खरीदकर पैसे देने जाता हूँ, तब इस जेब में नहीं मिलता है। पता नहीं कौन निकाल लेता है। जबकि रास्ते में हमारी भेंट भी किसी से नहीं होती। उसके मित्र ने कहा, कहाँ-कहाँ जाते हो? उसने कहा, एक दुकान पर जाकर कुछ खाता हूँ, दूसरे दुकान पर कुछ पीता हूँ और कुछ पैसे किराना सामान के लिये रखता हूँ। लेकिन किराना दुकान पर वे पैसे नहीं मिलते। मैं समझ नहीं पा रहा हूँ। उसके मित्र ने पूछा, तुम ये सब अवांछित चीजें क्यों खाते-पीते हो? उसने उसके जेब में हाथ डाला, तो देखा कि उसकी जेब फटी हुई थी। उसने कहा, एक तो तुम अवांछित वस्तुओं के खाने-पीने में अपना पैसा नष्ट करते हो। दूसरा तुम्हारी जेब फटी है, इसी से सारे पैसे गिर जाते हैं। नशे में तुम्हें यह बोध ही नहीं है कि पैसे फटी जेब से गिर जा रहे हैं। उस व्यक्ति ने कहा, मैंने तो कभी जेब को ठीक से देखा ही नहीं कि यह फट भी गई है। यही समाज की स्थिति है, अपने पास का बड़ा धन हमारे संयम और सुरक्षा के अभाव में नष्ट हो रहा है और दूसरे के पास भिखारी बने हुये हैं।

अतः यदि जीवन में सुख का अनुभव करना चाहते हैं, तो संयमी बनना होगा, अन्यथा श्रम से अर्जित भौतिक सुविधाएँ हमें सुखानुभव नहीं दे सकेंगी।

इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान रहे कि संयम किसलिये? संयम भगवत्प्राप्ति के लिये, संयम भगवत् सान्निध्य के लिये, संयम भगवान के साथ रमण और क्रीड़ा करने के लिये। अतः आइये संसार के क्षणिक सुखों के पीछे भाग रहे मन को संयमित कर हम उसे भगवान के चरणों में लगायें, तभी हम सच्चे सुख का अनुभव कर सकेंगे। ○○○

रथयात्रा-विशेष

भगवान श्रीजगन्नाथपुरी की रथयात्रा

स्वामी तन्निष्ठानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

श्रीक्षेत्र जगन्नाथ पुरी

प्राचीन काल से भारतवर्ष में जगन्नाथपुरी श्रीक्षेत्र तीर्थयात्रा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारत के पवित्र तीर्थ-स्थलों में एक जगन्नाथपुरी भी है। चारों धामों में यह दिव्य धाम है। ओड़िशा राज्य की राजधानी भुवनेश्वर से ६० कि.मी. दूर समुद्र किनारे पर यह क्षेत्र स्थित है। पुरी का मुख्य आकर्षण श्रीजगन्नाथ मन्दिर है। यहाँ पर श्रीजगन्नाथदेव, भ्राता बलराम तथा भगिनी सुभद्रा के साथ विराजमान हैं। सदियों से पुरी क्षेत्र को शंखक्षेत्र (क्योंकि इस क्षेत्र की आकृति शंख के समान है), नीलगिरि, नीलाद्रि, नीलाचल, पुरुषोत्तमक्षेत्र, श्रीक्षेत्र, जगन्नाथ धाम, जगन्नाथपुरी आदि नामों से जाना जाता है। मत्स्यपुराण, कुर्मपुराण, स्कन्दपुराण, ब्रह्मपुराण, नारदपुराण, पद्मपुराण, कपिलसंहिता एवं ओड़िया साहित्य में (नीलाद्रि महोदय) पुरी तथा भगवान् जगन्नाथ के मन्दिर के निर्माण का वर्णन आता है। दारुब्रह्म जगन्नाथजी का उल्लेख ऋग्वेद (१०.१५५.३) में भी मिलता है। यहाँ तक कि रामायण और महाभारत में भी जगन्नाथ-मन्दिर के सन्दर्भ हैं। माना जाता है कि महाभारत के पाण्डवों ने भी यहाँ आकर जगन्नाथजी की पूजा की थी। श्रीजगन्नाथ पहले नीलमाधव के नाम से पूजे जाते थे। बौद्धों के ग्रन्थों में भी पुरी का उल्लेख मिलता है। यहाँ आदि शंकराचार्य, वैष्णवों के चार आचार्य – रामानुजाचार्य, विष्णुस्वामी, निम्बार्काचार्य तथा मध्वाचार्य भी आये थे और उन लोगों ने अपने मत का यहाँ प्रचार किया। गुरुनानक देव भी यहाँ आये थे। किसी-किसी का यह भी कहना है की इस्लाम के मुहम्मद पैगंबर तथा ईसाइयों के भगवान ईसा मसीह भी यहाँ पधारे थे। यह श्रीचैतन्यदेव की तो लीलाभूमि ही रही है। ८१० में आदि शंकराचार्यजी पुरी आये और उन्होंने वहाँ गोवर्धन मठ (उनके द्वारा स्थापित चार मठों में से एक मठ) की स्थापना की। कहते हैं कि भगवान विष्णु पुरी धाम में अन्न ग्रहण, रामेश्वरम् में स्नान, द्वारका में शयन और बद्रीनाथ में ध्यान करते हैं।

मन्दिर का इतिहास :

वर्तमान मन्दिर के निर्माण कार्य का आरम्भ गंग वंश के कलिंग राजा अनन्तवर्मन चोडगंगदेव ने बारहवीं सदी में कराया था। मन्दिर के जगमोहन और विमान भाग इनके शासन काल सन् १०७८ से ११४८ के दौरान बने थे। फिर सन् ११९७ में जाकर उड़िया शासक अनंग भीमदेव ने इस मन्दिर को वर्तमान रूप दिया था। मन्दिर में जगन्नाथ अर्चना सन् १५५८ तक होती रही। इस वर्ष अफगान जनरल काला पहाड़ ने उड़िसा पर हमला किया और मूर्तियाँ तथा मन्दिर के भाग ध्वंस किए और पूजा बंद करा दी। विग्रहों को गुप्त रूप से चिलिका झील स्थित एक द्वीप में रखा गया। बाद में, रामचन्द्र देव के खुर्दा में स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने पर मन्दिर और इसकी मूर्तियों की पुनर्स्थापना हुई। मुगलों से बचाकर मन्दिर की सुव्यवस्था करने में नागपुर के महाराजा रघुजी भोंसले की बड़ी भूमिका है। मुगलों के बाद सन् १७६० में मराठों का राज्य आया। हिन्दू होने के कारण श्रीजगन्नाथजी पर उनकी बहुत श्रद्धा थी। उन्होंने मन्दिर तथा यात्रियों के लिए सुविधा प्रदान की। वे बहुत-सा धन इस कार्य के लिए प्रति वर्ष देते थे। उन्होंने बहुत बड़ी भूमि मन्दिर का खर्च चलाने के लिए दान भी दी थी। वे सभी स्थानीय रीति-रिवाजों, परम्पराओं तथा विधि का सम्मान करते थे। यही कारण है कि उनके शासनकाल में यात्रियों की संख्या में बहुत वृद्धि हुई थी। सन् १७९० में मराठों ने बंगाल को जोड़नेवाली प्रसिद्ध जगन्नाथ-सड़क बनवाई। मराठों के कार्यकाल में मन्दिर के कामकाज की देखरेख खुर्दा के राजा किया करते थे। सन् १८०३ में अँग्रेजों का शासन आया, तब पुरी के महाराजा मन्दिर की व्यवस्था देखते रहे। उनके शासनकाल में रेल लाईन बिछाई गई। अब (सन् १९६० से) उसकी देखभाल शासन से नियुक्त अधिकारी करता है।

मन्दिर की स्थापत्यकला

श्रीजगन्नाथ मन्दिर ४ लाख वर्ग फुट क्षेत्र में फैला (१०.७ एकड़) है और २० फुट ऊँची दीवारों से घिरा है। यह मन्दिर स्थापत्यकला की कलिंग शैली से बना है। श्रीमन्दिर के ४ भाग हैं – विमान, जगमोहन, नाटमण्डप और भोगमण्डप। मन्दिर की ऊँचाई रास्ते से २१४ फीट है। मन्दिर का मुख्य ढाँचा ६५ मीटर ऊँचे पाषाण के चबूतरे पर बना है, जिसके भीतर गर्भगृह में रत्नवेदी (१६ फीट लम्बी, १३ फीट चौड़ी और ४ फीट उँची) पर बायें से दायें श्रीबलभद्रजी, श्रीसुभद्राजी, श्रीजगन्नाथजी और सुदर्शनचक्र की काष्ठ मूर्तियाँ स्थापित हैं। उस रत्नवेदी की परिक्रमा करने हेतु मार्ग है। जगन्नाथजी की बायीं ओर धातु मूर्ति के रूप में भूदेवी (सरस्वती) और दाहिनी ओर श्रीदेवी (लक्ष्मी) विराजमान हैं। मन्दिर के शिखर पर अष्ट-धातुओं से बना सुदर्शनचक्र (नीलचक्र) है। वह लगभग ३६ फीट की ऊँचा है। उसके उपर ध्वजा-पताका निरन्तर लहराती रहती है। पताका प्रतिदिन परिवर्तित की जाती है, जिसे पतितपावन कहते हैं। मन्दिर के चारों दिशाओं में चार द्वार हैं – पूर्व दिशा में सिंहद्वार, दक्षिण दिशा में अश्वद्वार, पश्चिम दिशा में हाथीद्वार और उत्तर दिशा में व्याघ्रद्वार है। मुख्य सिंहद्वार के सामने ३६ फीट ऊँचा एक पत्थर का विशाल स्तम्भ है, जिसे अरुणस्तम्भ कहते हैं, जिसे मराठों ने कोणार्क से लाया था। उस स्तम्भ के ऊपर सूर्यदेव प्रार्थना करने की मुद्रा में विराजमान हैं। सिंहद्वार से अन्दर जाते ही बायीं ओर एक छोटा-सा जगन्नाथजी (पतितपावन) का मन्दिर है, जिसका दर्शन रास्ते से कोई भी कर सकता है। उसके बाद २२ सीढ़ियाँ पार करनी होती हैं, तब भगवान नरसिंह, विमलादेवी, लक्ष्मीदेवी के मन्दिरों जैसे छोटे-छोटे करीब १२० मन्दिरों से घिरा मुख्य मन्दिर आता है। मन्दिर बलुआ पत्थर (सैन्ड्स्टोन) से देऊल शैली में बना है। मन्दिर प्रांगण

श्रीजगन्नाथ मन्दिर

में ही भगवान के भोग हेतु एक विशाल रसोईघर है, जहाँ शास्त्रीय पद्धति से ५६ तरह के अन्नभोग मिट्टी के घड़ों में पकाये जाते हैं। इस पाकशाला में एक बार में ४५ मिनट के

भीतर १०,००० लोगों का प्रसाद बन सकता है। विमलादेवी का मन्दिर शक्तिपीठ कहलाता है, जहाँ भगवती सती के चरण गिरे थे। जगन्नाथजी को भोग लगाने के बाद उसे विमला देवी को भी दिखाया जाता है, तभी उसे महाप्रसाद कहते हैं। भगवान के भोग-रसोई की देखभाल लक्ष्मीदेवी करती हैं।

भगवान् जगन्नाथजी का आविर्भाव :

पुराणों के अनुसार सावर राजा (आदिवासी राजा) विश्ववसू भगवान् जगन्नाथजी की नीलमाधव के रूप में पूजा करते थे। कलिंग के राजा इन्द्रद्युम्न ने इस गुप्त देवता के विषय में सुना था। उन्होंने विद्यापति ब्राह्मण को देवता की खोज में भेजा। कठोर परिश्रम तथा युक्ति से विद्यापति नीलमाधव भगवान् को खोजने में सफल हुए। किन्तु राजा इन्द्रद्युम्न को देवता के दर्शन न हो सके। भगवान् के दर्शन की उनकी तीव्र इच्छा के कारण उन्हें दिव्य स्वप्न में नीलमाधव के दर्शन प्राप्त हुए। इस स्वप्न में राजा को आदेश मिला कि वे भगवान् विष्णु के रूप में श्रीजगन्नाथदेव की पूजा करें। समुद्र किनारे पर मिले नीम की लकड़ी से भगवान की मूर्ति बनवाने का निर्देश उन्हें स्वप्न में मिला। स्वप्न के अनुसार प्रत्यक्ष में राजा को समुद्र किनारे चक्रतीर्थ नामक स्थान पर नीम के तने प्राप्त हुए। राजा ने स्वर्ग के शिल्पकार विश्वकर्मा से भगवान् की मूर्तियाँ बनाने की प्रार्थना की। राजा की प्रार्थना को विश्वकर्मा ने इस शर्त पर स्वीकार किया कि कार्य समाप्त होने तक कोई भी उन्हें परेशान नहीं करेगा तथा कार्य को गुप्त रूप से भी कोई नहीं देखेगा। विश्वकर्मा की इस शर्त को राजा ने स्वीकार कर लिया। विश्वकर्मा मूर्ति बनाने लगे। अत्यन्त उत्सुकता तथा महारानी गुण्डिचा के आग्रह के कारण शिल्पशाला में झाँकने से राजा स्वयं को न रोक सका। कार्य पूर्ण होने के पूर्व ही राजा ने मूर्ति देख ली। भगवान् के हाथों को बनाने का कार्य शेष रह गया था। राजा की इस धृष्टता से विश्वकर्मा क्रोधित हुए और कार्य अधूरा ही छोड़कर वे चले गये। इस प्रकार भगवान् जगन्नाथ, भ्राता बलभद्र तथा भगिनी सुभद्रा की हाथरहित मूर्तियों को ही मन्दिर में स्थापित किया गया। बलभद्र रूद्र के प्रतीक हैं, सुभद्रा आदिशक्ति की प्रतीक हैं और जगन्नाथ विष्णु के प्रतीक हैं। इसी क्रम में तीनों विग्रह क्रमशः भूत, वर्तमान और भविष्य के प्रतीक माने जाते हैं। सुदर्शनचक्र नारायण के प्रतीक माने जाते हैं।

रथयात्रा

भगवान जगन्नाथ की सभी यात्राओं में सबसे प्रमुख और महत्त्वपूर्ण है रथयात्रा-उत्सव, जो सारे विश्व में लोकप्रिय है। रथयात्रा में पारम्परिक सद्भाव, सांस्कृतिक एकता और धार्मिक सहिष्णुता का अद्भुत समन्वय देखने को मिलता है। श्रीजगन्नाथजी की रथयात्रा **आषाढ़ शुक्ल द्वितीया** को जगन्नाथपुरी में आरम्भ होती है। यह रथयात्रा पुरी का प्रधान पर्व भी है। इसमें भाग लेने के लिए भक्तगण सम्पूर्ण विश्व से आते हैं। भगवान जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्राजी की प्रतिमायें मन्दिर से बाहर निकालकर अलग-अलग रथों में विराजमान होकर लगभग ३ किमी की दूरी पर स्थित गुण्डिचा मन्दिर में जाती हैं। क्योंकि ये ९ दिनों की यात्रा होती है, इसलिए इसे **नवदिनात्मक यात्रा** भी कहते हैं।

रथयात्रा क्यों?

गुण्डिचा मन्दिर में देवताओं के शिल्पी विश्वकर्मा ने भगवान जगन्नाथ, बलभद्र व सुभद्राजी की प्रतिमाओं का निर्माण किया था, जिसे ब्रह्मलोक भी कहते हैं। रानी गुण्डिचा भगवान जगन्नाथ के परम भक्त राजा इन्द्रद्युम्न की पत्नी थीं, इसीलिए रानी को भगवान जगन्नाथ की मौसी कहा जाता है। भगवान अपनी मौसी को दिये वचन के अनुसार साल में एक बार उनके घर गुण्डिचा मन्दिर ७ दिन रहने आते हैं। इसलिए इसे **गुण्डिचा यात्रा** भी कहते हैं। 'हमारे पुरखों ने यह मन्दिर बनवाया है, यह अभिमान अगले पीढ़ियों में न हो' इसलिए राजा इन्द्रद्युम्न ने भगवान से वर माँगा था कि उनका वंश समाप्त हो जाए। तब रानी गुण्डिचा को निःसन्तान होने का दुःख हुआ। वैसे तो वे जगन्नाथजी को ही पुत्र मानती थीं। भगवान ने उन्हें प्रति वर्ष उनके घर ७ दिन रहने का वचन दिया था।

एक मत ऐसा भी है कि श्रीमन्दिर सभी के लिए खुला नहीं है, इसलिए वंचितों को दर्शन देने हेतु पतितपावन होकर भगवान वर्ष में एक बार रथ में विराजमान होकर सबको दर्शन देते हैं। इसलिए उसे **पतितपावन-यात्रा** भी कहते हैं। भगवान पतितों पर कृपा करने की घोषणा करते हैं, इसलिए इसे **घोष-यात्रा** भी कहते हैं। (निलाद्रि महोदय १६/१७१, स्कन्द पुराण ३३.११) इसे **दशावतार-यात्रा** भी कहते हैं। स्कन्द पुराण के ५८वें अध्याय में स्कन्द (कार्तिकेय) भगवान महादेव से जगन्नाथपुरी को दशावतार क्षेत्र क्यों

कहते हैं, ऐसा प्रश्न पूछते हैं। उत्तर में महादेव उन्हें बताते हैं कि लोक-कल्याण हेतु भगवान विष्णु समय-समय पर धरती पर अवतार लेते हैं। महादेवजी स्कन्द को दशावतारों के बारे में विस्तृत जानकारी भी देते हैं। वे यह भी बताते हैं कि पुरी क्षेत्र ही इस जगत की उत्पत्ति, स्थिति और लय का प्रमुख केन्द्र है। इसीलिए इस क्षेत्र को **दशावतार क्षेत्र** कहते हैं और इस यात्रा को दशावतार-यात्रा भी कहते हैं।

ऐसा कहते हैं कि रथयात्रा बहन सुभद्रा के द्वारिका-भ्रमण की इच्छा पूर्ण करने के उद्देश्य से श्रीकृष्ण व बलराम ने अलग-अलग रथों में बैठकर करवाई थी। उसकी स्मृति में यह रथयात्रा प्रति वर्ष होती है। ऐसा भी कहा जाता है कि श्रीकृष्ण के मामा कंस उन्हें मथुरा बुलाते हैं, उन्हें लाने चाचा अक्रूर रथ लेकर जाते हैं। कृष्ण अपने भाई-बहन के साथ रथ में सवार होकर मथुरा जाते हैं, जिसके बाद से रथयात्रा पर्व आरम्भ हुआ। कुछ लोगों का मानना है कि इस दिन श्रीकृष्ण कंस-वध करके बलराम के साथ अपनी प्रजा को दर्शन देने के लिए मथुरा में रथयात्रा करते हैं।

रथ–निर्माण का श्रीगणेश

वसन्त पंचमी से रथों की लकड़ी का चुनाव होने लगता है और अक्षय तृतीया से रथों का निर्माण आरम्भ हो जाता है। वसन्त पंचमी के शुभ अवसर पर रथों की लकड़ी के लिए पेड़ों का चयन आरम्भ होता है। इसके लिए नारियल तथा नीम के पेड़ चुने जाते हैं। सबसे ऊँचा भगवान जगन्नाथजी का रथ होता है। रथ निर्माण शास्त्रोक्त विधि से किया जाता है। रथ निर्माण की विधि विश्वकर्मिया रथ-निर्माण पद्धति, गृह कर्णिका और शिल्पसारसंग्रह जैसे ग्रन्थों में है, लेकिन **विश्वकर्मा कर्मी** अपने पारम्परिक ज्ञान से ही रथों का निर्माण करते हैं। मन्दिर समिति का एक दल वसंत पंचमी से ही रथ के लिए पेड़ों का चयन प्रारम्भ कर देता है। इस दल को **महाराणा** भी कहा जाता है। रथ निर्माण के लिए पुरी से लगे हुए **दशपल्ला** तहसिल के **रणपुर** जंगलों से ही अधिकांश नारियल और नीम के पेड़ काटकर लाए जाते हैं। नारियल के तने लम्बे होते हैं और इसकी लकड़ी हल्की होती है। पेड़ों को काटकर लाने की भी पूरी विधि निर्धारित है। उस जंगल के गाँव की देवी की अनुमति के बाद ही लकड़ियाँ लाई जाती हैं। पहले पेड़ काटने के बाद पूजा होती है। फिर गाँव के मन्दिर में पूजा के बाद ही लकड़ियाँ पुरी लाई जाती हैं। इन लकड़ियों के २१८८ टुकड़े किये जाते हैं।

प्रति वर्ष अक्षय तृतीया पर ही रथ निर्माण कार्य विघ्नराज गणेश की पूजा से आरम्भ होता है। भगवान **राम-कृष्ण** तथा **मदनमोहन** के सचल उत्सव-विग्रह पूजा के लिए मन्दिर से बाहर महाराजा के राजमहल के सामने राजपथ पर लाए जाते हैं। कटे हुए तीन तनों को पूजा के लिए रखा जाता है। पण्डित तनों को धोते हैं, मन्त्रोच्चार के साथ पूजन होता है और भगवान जगन्नाथ पर चढ़ाई गई मालाएँ इन पर डाली जाती हैं, इसे **आज्ञामाला** कहते हैं। मुख्य विश्वकर्मा इन तीनों तनों पर चावल और नारियल चढ़ाते हैं। इसके बाद एक छोट-सा यज्ञ होता है और फिर निर्माण के औपचारिक शुभारम्भ के लिए तीनों लकड़ियों को स्वर्ण, चाँदी एवं लोहे की कुल्हाड़ी से सांकेतिक तौर पर काटा जाता है। मुख्य-मुख्य विश्वकर्माओं को पगड़ी प्रदान की जाती है। भगवान जगन्नाथ का रथ बनाने का काम लगभग पुश्तैनी काम जैसा ही है। इस कारण रथ-निर्माण में ये लोग विशेष निपुण हैं। रथ-निर्माण में आठ प्रकार के अलग-अलग कला के कलाकार होते हैं। इनके अलग-अलग नाम भी होते हैं। रथ के आकार के योग्य लकड़ियों का आकार तय करने वाले **गुणकार**, रथ के पहियों से जुड़ा काम करनेवाले **पहि महाराणा**, रथ में कील से लेकर एंगल तक लोहे के काम करनेवाले **कमर कंट नायक** या **ओझा महाराणा**, रथों के अलग-अलग बन रहे हिस्सों को एकत्रित करनेवाले **चन्दाकार**, रथ में लगनेवाली लकड़ियों को काटने का काम करनेवाले **रूपकार** और **मूर्तिकार**, रथ पर रंग-रोगन से लेकर चित्रकारी करनेवाले **चित्रकार**, रथ की सजावट के लिए कपड़ों के सिलाने और डिजाइन का काम करनेवाले **सुचिकार** या **दरजी सेवक** और कारीगरों के सहायक तथा मजदूरों को **रथ भोई** कहते हैं। ९२ महाराणा, ८१ भोई, २२ लुहार, २२ रूपकार तथा मूर्तिकार और १४ दरजी काम करते हैं। तीनों रथों के लिए १०९० मीटर कपड़ा लगता है। प्रति वर्ष नये रथ बनवाये जाते हैं, पर सारथी, घोड़े, कलश और पार्श्वदेवता नवकलेवर के समय नये बनाये जाते हैं। सामान्यत: जिस वर्ष दो आषाढ़ मास पड़ते हैं, उसी वर्ष श्रीजगन्नाथजी का नवकलेवर पर्व पालित होता है। यह साधारणत: ८, १२ या १९ वर्षों बाद आता है। विग्रहों का नया शरीर धारण करना नवकलेवर कहलाता है।

रथों का विवरण

रथ ३४ भागों में विभक्त होता है, जैसे पहिये, दाण्डिया, अर, जालि, सिंहासन आदि। तीनों विग्रहों के लिए अलग-अलग रथों का निर्माण किया जाता है। उन रथों का विवरण इस प्रकार है –

देवता	जगन्नाथ	बलभद्र	सुभद्रा
रथ का नाम	नंदीघोष, गरुड़ध्वज, कपिध्वज	तालध्वज, लंगलाध्वज	दर्पदलन, देवदलन, पद्मध्वज
रथ के पहिये	१६	१४	१२
रथ की ऊँचाई	४५ फीट	४३ फीट	४२ फीट
रथ की लम्बाई चौड़ाई	३४.६X३४.६ फीट	३३X३३ फीट	३१.६X३१.६ फीट
घोड़ों का रंग	सफेद	नीला	कत्था
घोड़ों का नाम	शंख, बलाहक, श्वेत, हरिदाश्व	त्रिब्रा, घोरा, दीर्घशर्मा,	रोचिक, मोचिक, जीता,
सारथी	स्वर्णनावा दारुक	अपराजिता भास्करमातली	अर्जुन
रथ पर प्रतीक	हनुमानजी और नरसिंह भगवान	महादेवजी	दुर्गा
रथ के रक्षक	गरुड़	वासुदेव	जयदुर्गा
आवश्यक लकड़ी के टुकड़े	८३२	७६३	५९३
कपड़े का रंग	लाल, पीले	लाल, हरे	लाल, काले
ध्वजा	त्रैलोक्यमोहिनी	उनानी	नंदबिक
रथ की रस्सी	शंखचूड़ नागुनी	बासुकी	स्वर्णचूड़ा नागुनी
रथ के साथ चल-विग्रह	मदनमोहन	राम, कृष्ण	सुदर्शन
रथ में विराजमान (पार्श्वदेवता)	हरिहर, नरसिंह, गिरिधर राघवेन्द्र, षड्भुज कृष्ण चतुर्भुज-नारायण, प्रलाम्बरी रामचन्द्र, पंचमुख हनुमान	महादेव, बलराम, नटाम्बर २२भुजा नृसिंह, नृत्यगणपति अंगद लक्ष्मण को उठाकर, विष्णु मधुकैटभ से लड़ते हुए, अनंतवासुदेव, कार्तिकेश्वर	विमला, मंगला, वाराही चामुंडा, कात्यायनी, हरचण्डी, रामचण्डी, अघोरा, कंटकाड़ी (वनदुर्गा)
ऋषि	नारद, देवल, व्यास, शुक, पराशर, वशिष्ठ, विश्वामित्र, रुद्र	अंगिरा, पौलस्त्य, पुलह, अगस्ति, मुद्गल, अत्रेय कश्यप, कृष्ण	भृगु, सुप्रभ, वज्र, शृंगी, ध्रुव उलूक
कांसे का कलश	नभ, आकाश, व्योम	चन्द्र, सूर्य, विद्युत	परा, अपरा, वैखरी
रथ के कलश के पासवाले २ तोते	जीव, परम	श्रद्धा, विश्वास	सुपर्ण, द्वासुपर्ण
विग्रह के पीछे चित्र	इन्द्रद्युम्न और ब्रह्मा	शिव और नारद	दो सखियाँ
भगवान के शंख	शंख (पांचजन्य), चक्र (सुदर्शन,) गदा (कौमोदकी), पद्म (त्रिजोलिनी)	हल (सनोंद), मुशल (समर्थक)	

चन्दन यात्रा

२१ दिन चलनेवाली **चन्दन यात्रा** अक्षय तृतीया से प्रारम्भ होती है। इसमें **मणि विमान** से भगवान के प्रतिनिधि **मदनमोहन**, **भूदेवी** एवं **श्रीदेवी** तथा पालकी में **राम** तथा **कृष्ण** (उत्सव-सचल-मूर्तियाँ) विराजमान होकर आते हैं। वे श्रीमन्दिर से १ किमी. दूर स्थित **नरेन्द्र सरोवर** में नौका विहार करते हैं। उनको चंदन का लेपन किया जाता है। इन देवी-देवता के अलावा अपने-अपने स्थान से अपने-अपने विमान में **पंचपाण्डव (लोकनाथ, जम्बेश्वर, नीलकंठेश्वर, मार्कण्डेश्वर, कपालमोचन)** भी श्रीमन्दिर पहुँचते हैं और फिर सब एक साथ **चन्दन सरोवर** नौकाविहार करने जाते हैं तथा २१ दिनों तक जलक्रीड़ा करते हैं। स्नान पूर्णिमा यानी ज्येष्ठ पूर्णिमा के दिन जगन्नाथजी का आविर्भाव दिन होता है। उस दिन प्रभु जगन्नाथ को बड़े भाई बलरामजी तथा छोटी बहन सुभद्रा के साथ रत्नसिंहासन से उतार कर मन्दिर के पास बने स्नान मण्डप में ले जाया जाता है। १०८ कलशों से उनका शाही स्नान होता है। स्नान-यात्रा उत्सव भी होता है।

स्नान यात्रा

जगन्नाथपुरी में रथयात्रा निकलने से लगभग १५ दिन पहले, **ज्येष्ठ माह की पूर्णिमा** को मनाया जानेवाला **स्नान यात्रा उत्सव** या जिसे **देव-स्नान पूर्णिमा** भी कहते हैं, पुरी का एक महत्त्वपूर्ण उत्सव है। हर साल इसे बड़े पैमाने पर मनाया जाता है। स्नान का यह अनुष्ठान भगवान जगन्नाथ की वार्षिक 'रथ यात्रा' से

जुड़ा है। स्कन्दपुराण के अनुसार ज्येष्ठ की पूर्णिमा के दिन ही **भगवान जगन्नाथ का आविर्भाव** हुआ था। ब्रह्मपुराण में भी कृष्ण स्नान उत्सव का वर्णन मिलता है। एक बार द्वारका में माता रोहिणी (बलभद्र की माता) भगवान श्रीकृष्ण

की सभी पटरानियों को श्रीकृष्ण, राधारानी और गोपियों की वृन्दावन लीला के बारे में बता रही थीं। द्वार के बाहर श्रीकृष्ण, भ्राता बलभद्र और बहन सुभद्रा इस दिव्य लीला को सुनकर आनन्दित, भावविभोर और इतने विस्मित हो गये कि उनकी आँखें फैल गईं, मुख खुला रह गया और अन्य अंग जड़ होकर शरीर में प्रवेश कर गये। इस प्रकार श्रीकृष्ण जगन्नाथ बन गये। देवर्षि नारद ने जब इस अद्भुत रूप के दर्शन किये, तब उन्होंने भगवान से प्रार्थना की कि वे सम्पूर्ण विश्व को इस रूप में दर्शन दें। कुछ समय बाद राजा इन्द्रद्युम्न ने उनकी यह इच्छा पूर्ण की। स्वप्न में आकर भगवान राजा से कहते हैं, 'हे राजन! ज्येष्ठ माह की पूर्णिमा तिथि में मेरा आविर्भाव हुआ है। इसीलिए उस दिन मेरा अभिषेक कराकर पूजन-अर्चन करो। तभी से राजा ने पुरी में **'स्नान यात्रा पर्व'** का आयोजन प्रारम्भ किया। जगन्नाथपुरी में भगवान जगन्नाथ के कई उत्सव होते हैं और उसका आरम्भ स्नान यात्रा से होता है। इस दिन भगवान मन्दिर से बाहर आते हैं और प्रसाद के लिए प्रसिद्ध **'आनन्द बाजार'** के निकट एक उँचे स्थान पर स्नान मण्डप में विराजित होते हैं। क्योंकि भगवान का आदेश था कि उन्हें ऐसे स्थान पर स्नान कराना, जहाँ न केवल देवता, बल्कि साधारण मनुष्य भी आसानी से दर्शन पा सकें। जगन्नाथ मन्दिर के हस्तिद्वार के निकट एक **सोने का कुआँ** है, जो भगवान के आदेश पर राजा इन्द्रद्युम्न ने खुदवाया था। स्कन्दपुराण के अनुसार ज्येष्ठ पूर्णिमा के पहले दिन विश्व के सभी पवित्र तीर्थों का जल उस कुँए में प्रविष्ट होता है। भगवान के महास्नान हेतु उसका जल १०८ घड़ों में भरा जाता है। उसमें कर्पूर, चन्दन तथा सुगन्धित तेलों को डालकर उसके ऊपर श्रीफल रखते हैं।

राजा इन्द्रद्युम्न ने भगवान की लकड़ी की प्रतिमायें स्थापित की थीं और १२वीं शताब्दी के पुरी के इस जगन्नाथ मन्दिर में उनकी पूजा करने से पहले उन्हें स्नान कराया था। भगवान के इस स्नान को उड़िसा में मानसून के आगमन का संकेत भी माना जाता है। रथ यात्रा का आरंभ पवित्र त्रिमूर्ति के स्नान-यात्रा से होता है, जिसे देव-स्नान पूर्णिमा भी कहते हैं। ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा को वैदिक मंत्रोच्चारण के बीच भगवान जगन्नाथ, बलभद्र, सुभद्रा और सुदर्शन को मन्दिर के गर्भगृह से निकालकर पंक्ति में स्नान मंडप में लाया जाता है, जिसे **पाहण्डी बिजे** कहते हैं। भगवान जगन्नाथ के उत्सव-विग्रह श्रीमदनमोहनजी को भी स्नान-मण्डप में लाकर अवस्थित करते हैं। उनकी स्नान-वेदी इतनी ऊँची है कि कोई भी व्यक्ति भगवान का दर्शन मुख्य मार्ग (बड़दाण्ड) से कर सकता है।

भगवान जगन्नाथ का जलाभिषेक

स्नान मंडप के परिसर के सुना कुआ (सोने का कुआँ) से वर्ष में एक बार इस पवित्र स्नान के लिए १०८ घड़ों में पानी निकाला जाता है। इन सभी घड़ों को भोग-मंडप में रखा जाता है और मन्दिर के पुजारी इन घड़ों के जल को हल्दी, जव, अक्षत, चन्दन, पुष्प और सुगंध से पवित्र करते हैं। इसके बाद इन घड़ों को स्नान-मंडप में लाकर विधि-विधान से **पवमान** मन्त्रोच्चार के साथ भगवान जगन्नाथ (३५घड़े), बलभद्र (३३घड़े), सुभद्रा (२२घड़े) और सुदर्शन (१८घड़े) का सूर्योदय से सूर्यास्त तक स्नान (कुल १०८घड़े) सम्पन्न होता है। इसे जलाभिषेक कहते हैं। ऊपर सें सुगन्धित पुष्पों की वर्षा होती है। फूल ठंडे होते हैं और समुद्र की हवा भी ठंडी होती है, जिससे भगवान को सर्दी हो जाती है और उन्हें बुखार आता है।

स्नान के बाद बीमार हो जाते हैं भगवान जगन्नाथ – पौराणिक मान्यताओं के अनुसार, अत्यधिक स्नान के कारण भगवान जगन्नाथ और दोनों भाई-बहन बीमार पड़ जाते हैं। स्कन्दपुराण के अनुसार भगवान ने राजा इन्द्रद्युम्न से कहा था, 'मैं अब १५ दिनों तक दर्शन नहीं दूँगा। मुझे औषधि-पथ देना और स्वस्थ होने पर मुझे रथ में घुमाने ले जाना, मैं

भ्रमण करना चाहूँगा।' इसीलिये भगवान को एकान्त वास में रखा जाता है और राजवैद्य उनकी चिकित्सा करते हैं। एकान्तवास में करीब १५ दिनों तक गुप्त सेवा होती है। १५ दिनों तक आराम करने के बाद (जिसे **अणसर** कहते हैं) भगवान एवं उनके भाई-बहन जैसे ही स्वस्थ होते हैं, उनका दिव्य शृंगार किया जाता है। इसके बाद वे अपने-अपने रथों में सवार होकर ८ दिनों के लिए अपनी मौसी के घर **गुण्डिचा मन्दिर** जाते हैं। स्नान के बाद १५ दिन भगवान जब दर्शन नहीं देते, तब भक्त उनके **पट-चित्र** का दर्शन करते हैं। रथयात्रा के पहले दिन भगवान के दर्शन होते हैं, जिसे **नवयौवन दर्शन** कहते हैं।

चैतन्य महाप्रभु ने अपने संन्यास के बाद अधिकांश समय जगन्नाथपुरी में ही व्यतीत किया था। वे भी इन सभी उत्सवों में बड़े आनन्द से सम्मिलित होते थे। जब १५ दिन जगन्नाथ के दर्शन नहीं होते, तो उनकी व्याकुलता देख भगवान ने उन्हें **अलारनाथ** जाने को कहा, जहाँ भगवान विष्णु का चतुर्भुज विग्रह है। उनकी व्याकुलता के कारण वहाँ के पत्थरों पर उनके निशान पड़े हैं।

गजवेष

स्नान के बाद शाम को भगवान जगन्नाथ और भ्राता बलभद्र को **गजवेष (हाथी के वेषवाले पोशाकों)** से सुसज्जित किया जाता है और बहन सुभद्रा को कमलवाले पोशाक पहनाए जाते हैं। इसकी कथा कुछ इस प्रकार है – **गणपती भट्ट** नामक एक परमब्रह्म के उपासक थे। उन्होंने सभी शास्त्रों का अध्ययन कर यह निष्कर्ष निकाला कि परम ब्रह्म का दर्शन करने से जीव मुक्त हो जाता है। उन्होंने यह भी पढ़ा था कि जगन्नाथपुरी में परमब्रह्म निवास करते हैं और उनकी यह धारणा हुई थी कि उन्हें सूड़ होती है। जब वे जगन्नाथपुरी आये और ज्येष्ठ पूर्णिमा के दिन उन्होंने भगवान के दर्शन किये, तब पाया कि भगवान की सूड़ नहीं है और इसलिए वे परमब्रह्म नहीं हो सकते। तब भगवान भक्त की इच्छा पूर्ण करने के लिए उन्हें गजमुख में (गणेशजी के रूप में) दर्शन देते हैं। तब से स्नान-यात्रा के दिन शाम को जगन्नाथ तथा बलभद्र को गजवेश और सुभद्रा को कमल का वेश कराते हैं।

अनवसर

जब स्नान से उन्हें ज्वर आ जाता है, तब १५ दिनों तक प्रभुजी को मन्दिर में अलग रखा जाता है। इसे अनवसर काल कहते हैं। इन १५ दिनों की अवधि में महाप्रभु की गुप्त सेवा होती है, मन्दिर के प्रमुख सेवकों और शाही वैद्यों के अलावा कोई दूसरा उन्हें नहीं देख सकता। स्नान के पाँचवें दिन फुलरी नामक जड़ी-बूटियों के तेल का प्रयोग विग्रहों की चिकित्सा के लिए किया जाता है। इस काल में नियमित भोग तथा धूप रोक दिये जाते हैं। उन्हें विभिन्न फलों का रस तथा विभिन्न जड़ी-बूटियों का अर्क दिया जाता है। इस दौरान विग्रहों का पुन: रंग तथा आवश्यक मरम्मत करके उनका नवीनीकरण किया जाता है। १५ दिनों बाद भगवान स्वस्थ होकर कक्ष से बाहर निकलते हैं।

नेत्रोत्सव और नवयौवन

अनवसर काल में विग्रहों के केवल शरीर पर ही रंग चढाते हैं। रथयात्रा के दो दिन पहले यानि आषाढ़ मास की अमावस्या के दिन उनकी आँखें रंगाई जाती हैं, जिसे **नेत्रोत्सव** कहते हैं और उसके दूसरे दिन भक्तों को वे दर्शन देते हैं, जिसे **नवयौवन** उत्सव कहते हैं।

नवकलेवर उत्सव में भगवान जगन्नाथ, बलभद्र, सुभद्रा और सुदर्शन की पुरानी मूर्तियों को बदलकर नयी मूर्तियाँ स्थापित की जाती हैं। अर्थात् जगन्नाथ, बलभद्र, सुभद्रा और सुदर्शन पुराना शरीर त्यागकर नया शरीर धारण करते हैं। परम्परानुसार नवकलेवर का कार्य तब किया जाता है, जब आषाढ़ मास अधिकमास होता है। यह प्राय: ८ वर्ष बाद, १२ वर्ष बाद या १८ वर्ष बाद आता है। ये मूर्तियाँ एक विशेष प्रकार की नीम की लकड़ी से बनायी जाती हैं, जिसे 'दारु ब्रह्म' कहते हैं। पुरानी मूर्तियों को भगवान के बगीचे में एक जगह गड्ढा खोदकर विसर्जित कर देते हैं, उसे **कोईली वैकुण्ठ** कहते हैं।

रथयात्रा

आषाढ़ शुक्ल द्वितीया के दिन जगन्नाथजी, बड़े भाई बलरामजी, छोटी बहन सुभद्राजी तथा सुदर्शनजी के साथ मन्दिर से बाहर आते हैं और रथ पर एक-एक कर विराजमान होकर यात्रा पर निकलते हैं। रथयात्रा आरम्भ होने से पहले इन चारों देवताओं का एक साथ आवाहन किया जाता है। यात्रा पर निकलने से पहले उन्हें खिचड़ी का भोग दिखाया जाता है। पहले सुदर्शनजी रत्नवेदी से ७ सीढ़ियों तक आने पर बलभद्रजी की यात्रा आरम्भ होती है। इसी तरह सुभद्राजी

तथा जगन्नाथजी भी आते हैं, जिसे **धाडी पहण्डी विजे** कहते हैं। बाहर लाने से पहले विग्रहों के नीचे कपास की गद्दियाँ लगाई जाती हैं, जिसे **तुलीलागी** कहते हैं। ७ सीढ़ियों के पास जगन्नाथ तथा बलभद्रजी के माथे पर विभिन्न प्रकार के रंगबिरंगी फूलों के बड़े मुकुट लगाये जाते हैं और इन विग्रहों को बाहर लाते समय उन मुकुटों को एक लय में हिलाते हैं, ताकि विग्रह आसानी से हिल सके। उसे **टाहिया** कहते हैं। वह बाँस की कमचियों में विभिन्न फूलों को सजाकर बनाया जाता है। वे मुकुट ऐसे हिलते हैं, मानो विशाल हाथी अपनी मस्ती में धीरे-धीरे कान हिलाते चल रहा हो। सुदर्शनजी और सुभद्राजी के विग्रह दोनों भाईयों के विग्रहों से छोटे होते हैं, इसीलिए उन्हें उठाकर लाया जाता है। बाद में रथों को सीढ़ियाँ लगाई जाती हैं, जिसे **चारभिडा** कहते हैं। कासर घण्टा (काहाली, घडियाल), शहनाई (तेलंगीबाजा), शृंग (तुतारी) आदि वाद्यों की जयध्वनि में सबसे पहले सुदर्शनजी बाहर आते हैं और सुभद्राजी के रथ पर विराजमान होते हैं। उनके बाद बलभद्रजी, सुभद्राजी और अन्त में भगवान जगन्नाथ रथ पर विराजमान होते हैं। इसी क्रम में चारों विग्रह एक के पीछे एक, एक साथ रथ तक लाये जाते हैं। राम और कृष्ण के उत्सव-सचल-विग्रह बलरामजी के रथ पर और मदनमोहनजी जगन्नाथजी के रथ पर विराजमान होते हैं।

चारों विग्रह तथा उत्सव-सचल प्रतिमाओं के अपने-अपने रथों पर विराजमान होने के पहले भगवान की आज्ञा माँगी जाती है और होम किया जाता है, इसे **रथ अनुकूल** कहते है। भगवान के विग्रह न गिरें, इसलिए डोरी से बाँधे जाते हैं, इसे **सेनापटालागी** कहते हैं। पुरी के गोवर्धनमठ के शंकराचार्यजी वहाँ आते हैं और प्रणाम कर चले जाते हैं। पुरी के गजपति महाराज या उनके प्रतिनिधि रथों को स्वर्ण की झाड़ू से साफ करते हैं और चन्दन-जल छिड़कते हैं, इसे **छेरा पहरा** कहते है।। राजमहल से वे कनकदुर्गा की पूजा कर तामजान (पालकी) से आते हैं। आते ही आचमन के बाद कर्पूर-आरती करते हैं और चामर करते हैं। इसे **राजनीतिबंदापना** कहते हैं। लगाई गयी सीढ़ियाँ निकाल दी जाती हैं और रथों को घोड़ों से जोड़ दिया जाता है। इसके बाद ही गुण्डिचा मन्दिर की ओर यह यात्रा प्रस्थान करती है। रथ की गतिविधियों के नियन्त्रक को **दाहुक** कहते हैं। सबसे आगे बड़े भाई बलभद्रजी का रथ चलता है। उनके बाद बहन सुभद्रा और अन्त में जगन्नाथजी का रथ चलता है। भगवान रास्ते में **बलगण्डी** नामक स्थान पर भक्त **सालवेग** को दर्शन देने के लिए रुकते हैं। उसके बाद सभी रथ गुण्डिचा मन्दिर पहुँचते हैं। रात भर भगवान रथ में ही रहते हैं और पतितपावन होकर भक्तों की मनोकामना पूर्ण करते हैं। रथ पर उन्हें केवल **सुका कोराखई** (मीठी लाई) का भोग लगता है। अन्नभोग वे जब गुण्डिचा मन्दिर में विराजमान होंगे, तब लगाया जाता है।

दूसरे दिन शाम को भगवान **गुण्डिचा मन्दिर** में विराजमान होते हैं, जिसे **आड़पमण्डप** कहते हैं। विग्रह एक-एक करके रथ से उतारकर बीच में न रुकते हुए अपने-अपने स्थान पर विराजमान होते हैं, जिसे **गोटी पहण्डी** कहते हैं। यहाँ वे ७ दिनों तक रहते हैं। मुख्य मन्दिर का रसोई घर इन दिनों बन्द रहता है और भगवान का भोग गुण्डिचा मन्दिर में ही बनता है। रथयात्रा के तीसरे दिन पंचमी **(हेरा पंचमी)** को भगवान जगन्नाथजी की पत्नी **लक्ष्मीजी** भगवान को ढूँढ़ते (स्वर्ण-पालकी में) गुण्डिचा मन्दिर आती हैं। उन्हें यात्रा पर नहीं लाया गया, इसलिए वे नाराज हैं। तब द्वैतापति भगवान की आज्ञा से गुण्डिचा मन्दिर के द्वार बंद कर देते हैं, जिससे लक्ष्मीजी नाराज होकर लौटते समय जगन्नाथजी के रथ का पहिया तोड़ देती हैं, जिसे **रथभंगा** कहते है। उन

दोनों की तब भेंट नहीं होती है। लक्ष्मीजी भगवान को शीघ्र वापस लौटने को कहती हैं। भगवान जगन्नाथ उनके अनुरोध को स्वीकार करते हैं और माता लक्ष्मी को उनकी सहमति के रूप में एक माला, जिसे **आज्ञा माला** कहते है, भेजवा देते हैं। लक्ष्मीजी लौटते समय मुख्य मार्ग से नहीं जाती हैं।

षष्ठी के दिन रथों को श्रीमन्दिर की ओर घुमाया जाता

है जिसे **दक्षिण मोड़** कहते हैं। महाप्रभु जगन्नाथ एवं उनके भाई-बहन के रथ की दिशा में परिवर्तन कर उसे आज दक्षिण की ओर मोड़ दिया जाता है। उस अवसर पर जो भोग दिखाते हैं, उसे **रथभोग** कहते हैं।

नवमी के दिन सभी देवतागण भगवान के दर्शन हेतु पधारते हैं, इस दिन का दर्शन विशेष तथा पवित्र माना जाता है जिसे **संध्यादर्शन** कहते हैं।

मुख्य मन्दिर की ओर पुनर्यात्रा (बाहुड़ा यात्रा)

मुख्य मन्दिर की ओर वापसी यात्रा को बाहुड़ा यात्रा कहते हैं। देवशयनी एकादशी के दिन से भगवान चार महीने के लिए निद्रा में चले जाते हैं। इससे पहले, भगवान जगन्नाथ को अपने मुख्य मन्दिर मे लौटना आवश्यक है। आषाढ़ शुक्ल दशमी को रथों की मुख्य मन्दिर की ओर पुनर्यात्रा प्रारम्भ होती है। रास्ते में **मौसी-माँ के मन्दिर** में भगवान रुकते हैं और उन्हें वहाँ **पोड़पीठा** का भोग दिया जाता है।

पहले बलभद्रजी और बाद में सुभद्राजी का रथ मन्दिर के सामने आ पहुँचता है। मन्दिर की दीवार के एक उपरी कोने से (जिसे **चाहणी मण्डप** कहते हैं) देवी लक्ष्मीजी (प्रतिमा में) भगवान जगन्नाथजी के रथ को आते हुए देखती हैं। जैसे ही वह रथ महाराजा के घर के सामने आकर रुकता है, वैसे ही उनके देवर बलभद्र के रथ को एक ओर से कपड़े से ढककर रास्ता बनाते हैं, ताकि बलभद्रजी देवी लक्ष्मी को न देख सकें। तब पण्डे लक्ष्मीजी की सचल उत्सव-प्रतिमा को जगन्नाथजी के रथ के सामने लाते हैं और तब महाराजा जगन्नाथजी तथा देवी लक्ष्मी से भेंट कराते हैं, जिसे **लक्ष्मीनारायण-भेंट** कहते हैं।

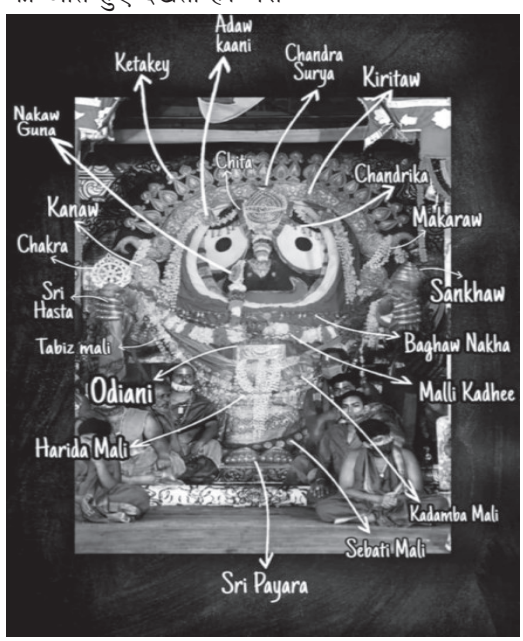

सुनाबेस

सभी रथों को मन्दिर के ठीक सामने लाया जाता है, परन्तु प्रतिमाएँ अभी एक दिन तक रथ में ही रहती हैं। आगामी दिन **एकादशी** को जब मन्दिर के द्वार देवी-देवताओं के लिए खोल दिए जाते हैं, तब इनका शृंगार विभिन्न स्वर्ण के आभूषणों से किया जाता है, जिसे **सुनाबेस** कहते है। **द्वादशी** के दिन तीनों रथों में विग्रह को ९ ऊँचे घड़ों में पौष्टिक पेय दिया जाता है, जिसे **अधरपना** कहते है। वह दूध, मिश्री, पनीर, केला, कपूर, सूखा मेवा, गोल मरीच और तुलसी जैसी जड़ी-बूटी से बनता है। घड़े विग्रहों के ओठों तक ऊँचे होते हैं। भगवान को भोग देने के बाद उन घड़ों को पार्श्वदेवता और प्रेतात्माओं के प्राशन करने हेतु फोड़ देते हैं, ताकि प्रेतात्माएँ मुक्त हो सकें।

यात्रा का समापन

यात्रा का समापन **त्रयोदशी** के दिन होता है। विग्रह एक एक करके रथ से उतारकर बीच में न रुकते हुए अपने- अपने स्थान पर मन्दिर के रत्नवेदी पर विराजमान होते हैं। मुख्य जगन्नाथ मन्दिर के अन्दर एक छोटा महालक्ष्मी का मन्दिर है। भगवती लक्ष्मी इसलिए क्रुद्ध हैं, क्योंकि उन्हें यात्रा में नहीं ले जाया गया। वे भगवान पर कटाक्ष करती हैं। प्रभु उन्हें मनाने का प्रयास करते हैं और कहते हैं कि देवी को सम्भवत: उनके भाई बलभद्र के साथ बैठना शोभा नहीं देता। पुजारी व देवदासियाँ इसे लोकगीतों में प्रस्तुत करते हैं। क्रुद्ध देवी मन्दिर को अन्दर से बन्द कर लेती हैं। परन्तु शीघ्र ही पंडितों का गीत **(लक्ष्मीनारायणकली)** और **रसगुल्लों** का भोग तथा सुन्दर साड़ियों का उपहार उन्हें प्रसन्न कर देता है। तब मन्दिर के द्वार खोल दिये जाते हैं और भगवान अन्दर प्रवेश करते हैं, जिसे **नीलाद्रिबिजे** कहते है। इसी के साथ इस दिन की भगवान जगन्नाथ की यह अत्यन्त अदभुत व अनूठी यात्रा हर्षोल्लास से सम्पन्न हो जाती है। मन्दिर में प्रवेश करते समय जगन्नाथजी ७ सीढ़ियों के पास रुकते हैं और विभीषणजी को दर्शन देते हैं, जिसे **विभीषण बंधापना** कहते हैं। यात्रा की समाप्ति के बाद इन रथों को भंग कर दिया जाता है, जिनकी लकड़ी मन्दिर की विशाल रसोई में लम्बे समय तक प्रयोग होती है।

भक्त सालवेग

एक मुसलिम भक्त जिनके लिए रथ मार्ग में रुकता है। रथयात्रा जगन्नाथ मन्दिर से गुण्डिचा मन्दिर तक ३ किमी. तक की दूरी तय कर जाती है, किन्तु इसके बीच रास्ते में सभी रथ भक्त **सालवेग** के लिए रुकते हैं, उसके बाद आगे बढ़ते हैं। हर साल भगवान जगन्नाथ अपने भक्त की मजार पर रुकते हैं और बताते हैं कि जो भी सच्चे मन से उनकी भक्ति करेगा, उसको वे स्वीकार करेंगे ही करेंगे। सालवेग की माता हिन्दू ब्राह्मण थी और पिता मुसलमान। पिता के मुगल सेना में सूबेदार होने के कारण सालवेग भी युवा होने पर मुगल सेना में भर्ती हो गए थे। एक बार युद्ध में वे घायल हुए और उनके माथे पर घाव हुआ, जो कोई भी वैद्य ठीक

नहीं कर पाया। तब उसे सेना से निकाल दिया गया। उनकी माँ ने सालवेग को भगवान जगन्नाथ की भक्ति करने को कहा। माँ की आज्ञा का पालन कर वे भगवान जगन्नाथ की भक्ति में डूब गये। कुछ दिन बाद भगवान जगन्नाथ ने उन्हें सपने में विभूति दी और सपने में ही उन्होंने वह विभूति अपने सिर पर लगायी। जैसे ही उनकी नींद खुली, तो उन्होंने देखा कि वे पूरी तरह स्वस्थ हो चुके हैं। इस घटना से वे भगवान जगन्नाथ के परम भक्त बन गये, किन्तु मुसलमान होने के कारण उन्हें मन्दिर में प्रवेश नहीं था। वे मन्दिर के बाहर बैठकर भगवान जगन्नाथ की भक्ति करते और भक्तिपूर्ण गीत लिखते। उड़िया भाषा में लिखे इनके भक्तिगीत धीरे-धीरे लोकप्रिय हो गये। मृत्यु के बाद उन्हें रथयात्रा के रास्ते में पड़नेवाले एक स्थान पर दफनाया गया। सालवेग का विश्वास था कि यदि उनकी भक्ति सच्ची होगी, तो उनकी मजार पर रथ आकर रुकेगा ही रुकेगा। उनकी मृत्यु के बाद जब रथयात्रा निकली और रथ उनकी मजार के सामने आया, तो वह रुक गया। लोगों ने रथ को आगे बढ़ाने का प्रयास किया, पर वह हिला तक नहीं। तब भीड़ में से एक व्यक्ति ने उड़ीसा के महाराजा को भक्त सालवेग की जय-जयकार करने का परामर्श दिया। सालवेग के नाम का जयघोष देने से ही रथ अपने आप चल पड़ा। तब से यह परम्परा चली आ रही है कि भक्त सालवेग की मजार पर जगन्नाथजी का रथ कुछ समय के लिए रुकता है, फिर आगे बढ़ता है।

राजा विभीषण की कहानी

जगन्नाथजी मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीरामचन्द्र प्रभु के वंश के दैवत थे। रावण वध के बाद रामजी अयोध्या लौट रहे थे, तब विभीषणजी ने पूछा, 'प्रभु, अब मुझे आपके दर्शन कैसे होंगे?' तब रामजी बोले, 'समुद्र (महोदधि) के तट पर जो पुरी ग्राम है, वहाँ जगन्नाथ के रूप में मेरी ही पूजा होती है। उनके दर्शन-पूजन से मेरे ही दर्शन होंगे।' इसलिए आज भी पुरी मन्दिर में ऐसी धारणा है कि प्रतिदिन विभीषण, हनुमानजी जगन्नाथ के दर्शन हेतु पधारते हैं। विभीषण द्वारा रचित जगन्नाथ वन्दना आज भी जगन्नाथ मन्दिर में गायी जाती है। कहते हैं कि रथयात्रा के समय जगन्नाथजी गरुड़-स्तम्भ के पास विभीषण के दर्शन देने के लिए थोड़ी देर रुकते हैं। वैसे ही रथ को जब गुण्डिचा मन्दिर के सामने मन्दिर की ओर मोड़ा जाता है, तब भी सभी रथ विभीषण के दर्शन देने के लिए थोड़ी देर रुकते हैं। सोनावेश के समय जब भगवान को सुवर्ण के आभूषण पहनाये जाते हैं, तब रथों के मुँह समुद्र की ओर होते हैं, गुण्डिचा मन्दिर की ओर नहीं। फिर भी वह उनके लिए ही होता है।

रामकृष्ण संघ और स्नान यात्रा

१. **रानी रासमणि द्वारा दक्षिणेश्वर में कालीमन्दिर का निर्माण** – दक्षिणेश्वर के काली मन्दिर में भवतारिणी की प्राण-प्रतिष्ठा ३१ मई, १८५५ स्नान यात्रा के दिन की गयी थी।

श्रीजगदम्बा के प्रति दीर्घकाल से रानी के हृदय में जो भक्ति विराजमान थी, वह उस समय साकार होने को उन्मुख हो उठी। भागीरथी के तट पर विस्तृत जमीन खरीदकर उन्होंने बहुत धन व्यय करके नवरत्नपरिशोभित विशाल मन्दिर, देव-उपवन तथा उसी से लगे हुए उद्यान का निर्माण प्रारम्भ कर दिया। तब से लगातार सन् १८५५ तक देव-मन्दिर के निर्माण-कार्य को सम्पूर्ण रूप से समाप्त न होते देखकर रानी अपने मन में यह सोचने लगीं कि जीवन अनिश्चित है, मन्दिर के निर्माण में दीर्घ समय व्यतीत कर देने पर श्रीजगदम्बा की

प्रतिष्ठा के संकल्प को सम्भवत: वे अपने जीवन में पूर्ण न कर सकेंगी। ऐसा विचार कर ३१ मई १८५५ (बंगला सन् १२६२ के ज्येष्ठ मास की १८ तारीख) को **श्रीजगन्नाथदेव की स्नानयात्रा** के दिन उन्होंने श्रीजगदम्बा के प्रतिष्ठा-कार्य को सम्पन्न किया।

२. रामकृष्ण संघ के छठवें परमाध्यक्ष स्वामी विरजानन्द का जन्म १० जून, १८७३ स्नान यात्रा के दिन हुआ था।

३. बेलुड़ मठ में जिस 'आत्मारामेर कोटा' में श्रीरामकृष्ण की पवित्र भस्मास्थि रखी हुई है, उसको स्नानयात्रा के दिन जगन्नाथभाव से विधिवत् स्नान कराया जाता है।

'आत्मारामेर कोटा'

माताजी श्रीसारदादेवी और रथयात्रा

उद्बोधन कार्यालय, कलकत्ता, १५ जून, १९१२ को सरयूबाला देवी लिखती हैं – आज रथयात्रा है। भूदेव ने रथ तैयार किया है। ठाकुर को रथ में बैठाने की तैयारी हो रही थी। गौरी माँ को आश्रम में विशेष काम था, इसलिए वे जल्दी बिदा लेकर चली गयीं। सीढ़ी तक उनके साथ जाकर मैं माँ के पास लौट आयी। इस बार पास के कमरे में ठाकुर को रथ पर आरूढ़ किया गया। माँ तख्त पर बैठी हुईं अपलक दृष्टि से उनको निहारती हुईं बहुत आनन्द प्रकट करने लगीं। बाद में भूदेव और भक्त लोग ठाकुर को रथ के सहित उठाकर नीचे ले गए तथा रास्ते में, गंगा के किनारे रथ खींचकर सन्ध्या होने पर पुन: कमरे में ले आये। इस समय स्त्री-भक्तों ने ऊपर के कमरे के भीतर रथ खींचा।

उसके बाद माँ, राधू, नलिनी दीदी और मैंने रथ को खींचा। जो भी आता, माँ प्रसन्न हो उससे रथ की बात कहने लगतीं। भक्त-महिलाएँ प्रसाद लेकर एक-एक कर चली गयीं। रात में भोग-आरती के बाद माँ ने स्वयं थाली में प्रसाद लाकर मुझे दिया। उस दिन घर पहुँचते रात के ग्यारह बज चुके थे। जब सामने के रास्ते में रथ खींचा जा रहा था, तो माँ कह रही थीं, ''सब लोग तो जगन्नाथपुरी नहीं जा पाते हैं। जिन्होंने यहाँ (ठाकुर को रथ में) दर्शन किया, उनका भी हो जाएगा।''

श्रीजगन्नाथजी की गुप्त गुण्डिचा रथयात्रा

श्रीजगन्नाथजी की रथयात्रा पुरी में प्रतिवर्ष बड़े धूमधाम से मनाई जाती है। पुरी के जगन्नाथ मन्दिर में एक और रथयात्रा बड़ी सादगी से मनाई जाती है, जिसे गुप्त गुण्डिचा रथयात्रा भी कहते हैं। इस रथयात्रा में रथ नही होते, अपितु पालकी का उपयोग किया जाता है। इस यात्रा में भगवान जगन्नाथ के साथ उनके भ्राता बलभद्र तथा भगिनी सुभद्रा साथ में नहीं होते, पर माँ दुर्गा के रूप में लक्ष्मीजी होती हैं। रथयात्रा के समय लक्ष्मीजी को साथ में नहीं ले जाया जाता है, जिसके कारण वे रुष्ट हो जाती हैं, तब जगन्नाथजी लक्ष्मीजी को आश्वासन देते हैं कि नवरात्रि में वे उन्हें माँ दुर्गा के रूप में रथयात्रा पर ले जायेंगे। भगवान के उस आश्वासन पूर्ति के लिए ही यह गुप्त गुण्डिचा यात्रा का आयोजन होता है।

आश्विन कृष्ण अष्टमी से आश्विन शुक्ल नवमी (दशहरा) तक १६ दिन यह यात्रा-उत्सव मनाया जाता है। इस समय अनेक प्रकार की विशेष-पूजाओं का आयोजन किया जाता है। श्रीजगन्नाथजी के प्रतीक माधवजी का विग्रह और माँ दुर्गा की प्रतिमा की शोभायात्रा पहले ८ दिन मन्दिर प्रांगण में ही निकाली जाती है। पालकी में विग्रहों को रखकर उन्हें मन्दिर-प्रांगण में स्थित विमलादेवी के मन्दिर में ले जाया जाता है। वहाँ उनकी परम्परानुसार पूजा होती है। अगले ८ दिन यानि आश्विन शुक्ल प्रतिपदा से नवमी तक रथाकृति विजय विमान (विजय रथ नामक पालकी) में दोनों विग्रह मन्दिर से बाहर प्रात: भोग के बाद डोलमण्डप साही मुहल्ले में स्थित नारायणी मन्दिर ले जाये जाते हैं। वहाँ उनकी विशेष पूजा की जाती है। वहाँ भगवान का बड़ा सुन्दर वेश-शृंगार होता है और उन्हें माण्डुआ नामक विशेष भोग लगाया जाता है। पूजा तथा शाम के भोगादि के बाद प्रतिदिन उन्हें पालकी में वापस मन्दिर ले आते हैं। मन्दिर से बाहर की यह यात्रा नवरात्रि के समय सम्पन्न होती है। यह पूजा दुर्गा-उपासना का एक अंग है। दशहरे के दिन मदनमोहनजी को वीर वेश में सजाकर दुर्गा-माधव तथा अन्य सचल देव-विग्रहों के साथ जगन्नाथ-वल्लभ मठ में ले जाकर वहाँ युद्ध क्रीड़ा की जाती है। युद्ध क्रीड़ा (शिकार नीति) के बाद उन्हें वापस मन्दिर ले आते हैं।

शेष भाग पृष्ठ २६८ पर

ईहा दीक्षित

स्वामी अनिलयानन्द, रामकृष्ण मठ, बैंगलुरू

महत्त्वकांक्षाओं की पूर्णता अथवा ध्येय की प्राप्ति में आयु बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं होती है। इससे सम्बन्धित यह प्रेरणादायी लेख प्रस्तुत है।

हाँ, यह कहानी है, उस होनहार लड़की की, जिसका नाम ईहा दीक्षित है, जो कि उत्तर प्रदेश के मेरठ की रहने वाली है, जिसने एक ओर पौधे लगा करके प्रकृति का ध्यान रखा, तो दूसरी ओर प्रकृति के प्रति अपनी जिम्मेदारी से भारत के प्रधानमन्त्रीजी तक को प्रभावित किया।

२०१९ में भारत का '***प्रधानमन्त्री राष्ट्रीय बाल पुरस्कार***' २६ बालकों को प्रदान किया गया, जिनमें ईहा अन्यतम रही। इस पुरस्कार को प्राप्त करनेवाले बच्चों में

वह सबसे कम उम्र की थी। उस समय उसकी उम्र केवल ६ वर्ष की थी। लगभग ४ वर्ष की आयु थी ईहा की, जब उसने किसी 'चलचित्र' और प्रधानमन्त्रीजी द्वारा मन की बात के माध्यम से वृक्षों के पोषण एवं संवर्धन के महत्त्व को समझा। तो बस, उसी समय उसने मन में पर्यावरण की समृद्धि के लिए कार्य करने की प्रतिज्ञा ली।

उसने अपने मन की बात माता-पिता के सामने रखी और उन्होंने भी उसके इस शुभ संकल्प का समर्थन किया। कहा जाता है कि पुरुषार्थ से तो ईश्वर भी प्राप्त हो जाते हैं और जब ईश्वर की जीती-जागती मूर्ति – ४ वर्ष की कोई नन्ही-सी बच्ची जब एक महान ध्येय से प्रेरित होकर कार्य करने जा रही है, तो उसे सबका प्रेम और समर्थन प्राप्त होना ही था।

ईहा ने अपनी इस योजना का आरम्भ अपने आस-पास के क्षेत्रों से किया। उसने पहला पौधा नींबू का लगाया। इससे ही अभियान का आरम्भ हुआ। प्रत्येक रविवार सुबह यह बालिका कुछ पौधों और उन्हें जमीन में लगाने के लिये उपयुक्त सामग्री लेकर अपने पिता के साथ घर से निकलती। पौधे लगाते-लगाते आगे बढ़ती जाती। इसके साथ-ही-साथ पहले लगाए पौधों की देख-रेख करती। आते-जाते लोग ईहा को इस प्रकार कार्य करते हुए देखते, उत्सुकतावश कभी-कभी कोई 'बिटिया ये क्या कर रही हो?' इत्यादि पूछ भी लेता। लेकिन आरम्भ में किसी ने हाथ बाँटने का साहस नहीं दिखाया। ईहा के हौसले बुलन्द थे। धीरे-धीरे ईहा के प्रयत्नों को सफलता मिलने लगी। बच्चे, युवा और वृद्ध जुटते गये। कुछ ही महिनों में इस प्रयास का रूपान्तरण एक सामाजिक आन्दोलन के रूप में हो गया।

अगर ध्येय निश्चित हो और प्रयासों में सकारात्मकता हो, तो कोई भी कार्य असम्भव नहीं रह जाता। ईहा ने अपने जन्मदिन के अवसर पर १००० से अधिक वृक्ष लगाने का बहुत विशाल लक्ष्य बनाया और उसको उसने पूरा भी किया, जो India Book of Records में दर्ज है।

कोई भी कार्य आसानी से नहीं होता। ईहा और उसके मित्र पौधे लगाकर आ जाते। बाद में वहाँ जाकर देखते तो, किसी ने पौधे उखाड़ दिये हैं, या तो पशु उसे खा गये हैं। इससे ईहा को बहुत दुख होता और वह रोती थी। उसके माँ-पिताजी उसको हिम्मत और धैर्य रखकर कार्य करते रहने को कहते।

अपनी पुत्री की पर्यावरण के प्रति सजगता देखकर ईहा के पिता श्री कुलदीप दीक्षित भी ईहा के साथ-साथ सहयोग करते रहे। ईहा के द्वारा किए गए कार्य की सराहना समाज के सभी स्तरों में होने लगी। सोशल मिडिया भी इनमें जुट गयी। अब ईहा की इस समाजोपयोगी योजना की सूचना सरकारी अफसरों को भी हुई। उनलोगों ने छानबीन की तथा ईहा के प्रयत्नों की बहुत प्रशंसा भी की। इसके साथ ईहा को बच्चों के लिए **'प्रधानमन्त्री राष्ट्रीय बाल पुरस्कार'** के लिए अनुशंसा भी कराई। माननीय प्रधानमन्त्री ने ईहा को अपनी 'Young Friend' कहकर और भी उत्साहित किया।

ईहा द्वारा पर्यावरण की रक्षा करना, उसको प्रदूषण मुक्त करना, पृथ्वी को हरियाली युक्त करना, यह सब कार्य तो प्रशंसनीय है ही, लेकिन इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है ईहा दीक्षित का आत्मविश्वास, श्रद्धा से परिपूर्ण हृदय एवं अनवरत कार्य में लगे रहने का अदम्य उत्साह। ○○○

प्रश्नोपनिषद् (२५)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुन: स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

तेजो ह वा उदानस्तस्मादुपशान्ततेजाः पुनर्भवमिन्द्रियैर्मनसि सम्पद्यमानैः।।३/९।।

अन्वयार्थ – ह वै (वस्तुत:) तेज: (बाह्य तेज अग्नि) उदान: (उदान है),तस्मात् (अत:) उपशान्त-तेजा: (जिसके शरीर की अग्नि बुझ चुकी है), (वह) मनसि (मन में) सम्पद्यमानै: (अवशोषित हो रहे) इन्द्रियै: (इन्द्रियों के साथ) पुनर्भवम् (पुनर्जन्म) (को प्राप्त होता है)।

भाष्य – यद्-बाह्यं ह वै प्रसिद्धं सामान्यं तेजः तत् शरीरे उदानः। उदानं वायुम् अनुगृह्णाति स्वेन प्रकाशेन इति अभिप्रायः।

भाष्यार्थ – जैसा कि प्रसिद्ध है, वह जो बाहर में प्रसिद्ध (सूर्य का) तेज है, वह शरीर में उदान (कहलाता) है; अर्थात् यह (सूर्य) अपने प्रकाश से 'उदान' वायु पर अनुग्रह करके स्थित है।

यस्मात् तेजः-स्वभावः बाह्य-तेजः अनुगृहीतः उत्क्रान्ति-कर्ता तस्मात् यदा लौकिकः पुरुषः उपशान्त-तेजाः भवति; उपशान्तं स्वाभाविकं तेजः यस्य सः, तदा तं क्षीण-आयुषं मुमूर्षुं विद्यात्। स पुनर्भवं शरीर-अन्तरम् प्रतिपद्यते।

चूँकि तेज-स्वभाव-वाला (वह जीव), अब (शरीर से) उत्क्रमण कर रहा है, जो बाह्य तेज (सूर्यताप) द्वारा अनुगृहित है, इसलिये जब लौकिक व्यक्ति की गर्मी उपशान्त हो जाती है, तब निस्तेज हुए उस व्यक्ति को क्षीण आयुवाला या मरणासन्न समझो। वह (जीव) पुनर्जन्म अर्थात् अन्य देह को प्राप्त करता है।

कथम्? सह-इन्द्रियैः मनसि सम्पद्यमानैः प्रविशद्भिः वाग्-आदिभिः।।३/९।।

कैसे प्राप्त करता है? मन में प्रवेश कर रहे वाक् आदि इन्द्रियों के साथ (सूक्ष्म शरीर के रूप में) जाकर (अन्य देह में प्रवेश करता है)।।३/९।।

पुनर्जन्म की प्रक्रिया

यच्चित्तस्तेनैष प्राणमायाति प्राणस्तेजसा युक्तः सहात्मना यथासङ्कल्पितं लोकं नयति।।३/१०।।

अन्वयार्थ – एष: (यह जीव) यत्-चित्त: (चित्त में जैसे संकल्पवाला होता है), तेन (उसके द्वारा) (वह संकल्प) प्राणम् (मुख्य प्राण में) आयाति (आता है)। प्राण: (वह प्राण) तेजसा युक्त: (अग्नि उदान प्राण. के साथ जुड़कर) आत्मना सह (जीवात्मा अर्थात् सूक्ष्म शरीर के साथ) यथा-सङ्कल्पितम् (पूर्वोक्त संकल्प के अनुसार) लोकम् (लोक शरीर में) नयति (ले जाता है)।

भाष्य – मरणकाले, यत् चित्तः भवति तेन एव चित्तेन संकल्पेन इन्द्रियैः सह प्राणं मुख्य-प्राण-वृत्तिम् आयाति। मरणकाले क्षीण-इन्द्रिय-वृत्तिः सन् मुख्यया प्राण-वृत्ति एव अवतिष्ठते इत्यर्थः। तत् अभिवदन्ति ज्ञातः उच्छ्वसिति जीवति इति।

भाष्यार्थ – मृत्यु के समय – (उस जीव के) चित्त में जो भाव है, उसी संकल्प तथा इन्द्रियों को साथ लेकर (वह जीव) मुख्य प्राण में प्रविष्ट हो जाता है। तात्पर्य यह कि मृत्यु के समय – इन्द्रिय-वृत्तियाँ क्षीण हो जाने पर, वह मुख्य प्राणवृत्ति (श्वास-मात्र) में स्थित हो जाता है। तब (उसके) सगे-सम्बन्धी कहते हैं, ''वह अब भी साँस ले रहा है, (अत:) जीवित है।''

स च प्राणः तेजसा उदानवृत्त्या युक्तः सन् सह-

शेष भाग पृष्ठ २८६ पर

सब दुखों की औषधि : जप और प्रार्थना

स्वामी सत्यरूपानन्द

मैं किसी की बात नहीं मानूँगा, इसको अहंकार कहते हैं। बुरी इच्छाएँ मन को बाँधती हैं। अत: भगवान के चरणों में मन को बाँधो, उससे मुक्त हो जाओगे। हमें संसार में जो कुछ मिला, उसमें संतुष्ट रहना है। द्वंद्व मन में न आने दो। किसी से भी मत्सर मत करो। जीवन में व्यवस्थित रहना चाहिए। ये सब अपने मन पर ही अवलंबित है। हमारे जीवन का उद्धार हमारे ही हाथ में है। हम अच्छे-बुरे में ये देखें कि मेरा मन सब छोड़ने को तैयार है या नहीं। मन ही मनुष्य के बन्धन और मोक्ष का कारण है। इसलिये मन पर ध्यान रखें कि भगवान के अतिरिक्त कहीं न जाए। दूसरों के साथ मौन रहने का अभ्यास करें। मनुष्य के मन में प्रेम की अनन्त आकांक्षा है। हम ये सब दूसरों से चाहते हैं, तो दुखी होते हैं। हमारे पास जो है, उसमें सन्तुष्ट रहना चाहिए। पत्नी को संसार सागर से पार करने में पति सहायता करेगा। पति संसार सागर को पार करने का माध्यम है, भोग का माध्यम नहीं। पति की परमेश्वर के रूप में उपासना करो, तो तुम्हें शान्ति मिलेगी। नहीं तो संसार में कामना-वासना में फँसे रहोगे। पति तो तुम्हारा जीवन साथी है। पति-पत्नी एक-दूसरे के जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायता करेंगे। मन को हम जैसा चाहें, वैसा रंगा सकते हैं। उसी मन में भगवान की छाप लग जाये, तो जीवन का कल्याण है। मन को उन्नत करने का उपाय है – भगवान का नाम और प्रार्थना, भगवान में शरणागति। तुम्हार मन संसार में इतना रमा है कि तुम छोड़ने की सोच नहीं सकते। यदि नहीं छोड़ोगे, तो जबरदस्ती छुड़ाया जायेगा। भगवान का भजन करना हो और सुखी रहना हो, तो मन का बोझ हल्का करो। मन का बोझ बढ़ता है संग्रह से। इसलिए अपरिग्रह की बात कही गयी है। इससे हम आध्यात्मिक जीवन में अग्रसर होंगे। भगवान के निकट जायेंगे।

प्रत्येक दिन की अपनी दिनचर्या बनाओ। उसमें दिनभर के कर्म में भगवान को जोड़ना है। मन का परिचय विचारों से होता है। मन हमारा बहुत विशाल है। मन को तैयार करना चाहिए। जिस काम में आत्मसन्तुष्टि होती है, वह काम हम बहुत आनन्द से कर सकते हैं। मन को यह समझाना चाहिए कि अब बहुत हो गया। उसमें ही हम सन्तुष्ट रहें। ऐसा होने से मन संसार से हटेगा और भगवान से चिपकेगा। प्राय: हमारा मन संसार में ही अटकता है। आत्मसन्तुष्टि का सम्बन्ध तन से नहीं मन से है।

भगवान के नाम का जप करो, उससे सन्तुष्टि मिलेगी। जब कभी रात में नींद नहीं आवे, तो उस समय में जप करो। मन एकाग्र हो या न हो, लेकिन हमें जप छोड़ना नहीं चाहिए। मन से जप करते ही रहना है। जपात् सिद्धि: – जप करने से सिद्धि अर्थात् इष्ट-दर्शन मिलता है। जप करने से मन की चंचलता कम हो जाती है। मन न लगे, तब भी जोर देकर जप करना चाहिए। जप में निरन्तरता और निर्धारित समय रखना चाहिए। जप में आवृत्ति आवश्यक है। हमारे मन में प्रमाद है, टालने की वृत्ति है। इस वृत्ति को दूर करना चाहिए और जप का अभ्यास करना चाहिए। जप को गोपनीय रखना चाहिये। किसी को बताना नहीं चाहिए कि मैं इतना जप करता हूँ, मैं उतना जप करता हूँ, मैं इसका जप करता हूँ आदि। जप आजीवन मृत्यु पर्यन्त करना पड़ेगा। श्वास-प्रश्वास की तरह करना है। बहुत बार जप में मन नहीं लगता, तब अपने इष्ट से प्रार्थना करनी चाहिए। हे प्रभो, हमारा मन आपके चरणों में रहे ऐसा कर दो। हमें भक्ति दो। भगवान भाव ग्रहण करते हैं, क्रिया नहीं। आध्यात्मिक चर्चा से भी बहुत सहायता मिलती है। जैसे पैसा-पैसा करने से मन धन-लोलुप हो जाता है, वैसे ही ईश्वर का नाम बार-बार जपने से मन ईश्वरपरायण होता है। इसलिये हमें मन को सतत भगवान के नाम में लगाना है। हमारा उद्देश्य है जन्म-मरण से मुक्ति और सब दुखों की औषधि जप और प्रार्थना है। ○○○

स्वामी विवेकानन्द के अनुज भूपेन्द्रनाथ दत्त : एक देशभक्त, विद्वान और क्रान्तिकारी

विनायक लोहानी

संस्थापक, परिवार संस्था, पश्चिम बंगाल

अनुवाद : स्वामी उरुक्रमानन्द

(गतांक से आगे)

भारत में प्रत्यावर्तन

सोलह वर्ष विदेश में रहने के बाद भूपेन्द्र १९२४ में भारत लौटे। लौटने के बाद ही डॉ. दत्त किसानों और श्रमिकों का संगठन बनाने लगे। १९२५ में बनी भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (ताशकंद में बनी एम.एन.राय की समिति नहीं) के मुजफ्फर अहमद और अब्दुल हलीम जैसे नेता बंगाल में कार्य कर रहे थे। डॉ. दत्त कम्युनिस्ट पार्टी के स्वयं सदस्य नहीं बने, उन्होंने कम्युनिस्टों तथा भारतीय कांग्रेस के बीच सेतु जैसा काम किया। उन्होंने भारतीय कांग्रेस में किसानों एवं श्रमिकों की रक्षा करनेवाले संगठनों को सबल करने की दिशा में प्रयास किया। वे राष्ट्रीय आन्दोलन को एक समाजवादी दिशा देना चाहते थे। वे १९२९ में अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी के सदस्य चुने गये।

वे अविभाजित बंगाल के विभिन्न प्रान्तों में जाया करते थे और वहाँ युवाओं, किसानों और श्रमिकों की बैठकों और सभाओं को सम्बोधित करते थे। जब वे प्रवास पर नहीं होते थे, तब वे अपने घर में मुक्त रूप से आगन्तुकों से मिलते थे। यह घर ३ गौर मोहन मुखर्जी लेन में था, जिसे उनके भाई महेन्द्रनाथ ने काफी लम्बी कानूनी प्रक्रिया के बाद पाया था। यह स्थान अब 'रामकृष्ण मिशन स्वामी विवेकानन्द जन्मस्थान एवं पैतृक आवास' के नाम से विख्यात है और एक संग्रहालय है। बगल के कमरे में उनके बड़े भाई महेन्द्रनाथ भी अपने आगन्तुकों को अपनी भ्रमण-यात्राओं की कहानियाँ सुनाया करते थे। उनके प्रशंसक ये सब नोट कर लेते थे, बाद में ये कई ग्रन्थों के रूप में प्रकाशित हुए। सामाजिक और राजनीतिक सहयोगियों के अलावा डॉ. दत्त से मार्गदर्शन लेने के लिए भी कई लोग आते थे। इनमें से अधिकांश युवा एवं छात्र होते थे। वे कई पाठचक्र भी चलाते थे, जहाँ जाकर वे मार्क्सवादी दर्शन पर आधारित सामाजिक तत्त्व समझाया करते थे। वे भारतीय संस्कृति और इतिहास की चर्चा करते थे तथा जिन लोगों के लिए वे काम कर रहे हैं, उनके जीवन की बारीकियों को जानने के लिये हमेशा अपने श्रोताओं का ध्यान केन्द्रित करते थे। वे भारतीय परिप्रेक्ष्य में मार्क्सवादी विश्लेषण की शैली का उपयोग करने के लिए कहते थे। वे अपने छात्रों को गैर मार्क्सवादी विद्वानों के शोधकार्यों को पूँजीवादी विद्वता समझकर नकारने की मनाही करते थे। वे गरीबों और शोषितों के लिए काम करनेवालों को किसी भी सीमा तक सहायता एवं मार्गदर्शन देने के लिये तत्पर रहते थे, किन्तु जो लोग केवल शुष्क विद्वत्ता एवं अपने कैरियर को सुदृढ़ करने के लिए उनसे पढ़ना चाहते थे, उन लोगों के लिये वे बहुत अधिक समय देने के इच्छुक नहीं थे। प्रत्येक व्यक्ति उनके मैत्री एवं सहानुभूतिसम्पन्न स्वभाव से प्रभावित रहता था। जो उनके सामाजिक और राजनीतिक विचारों से सहमत नहीं थे, वे भी उनका बहुत सम्मान करते थे।

कई नवयुवक जिन्हें डॉ. दत्त से शोषित और गरीबों के लिए कार्य करने की प्रेरणा मिली थी – जैसे सत्यनारायण मजुमदार, सोमनाथ लाहिड़ी, बंकिम मुखोपाध्याय और सरोज मुखोपाध्याय, जो बाद में ऊँचे कद के कम्युनिस्ट नेता बने। उस समय के कम्युनिस्ट नेता जैसे रणेन सेन और अब्दुल हलीम ने डॉ. दत्त के तत्कालीन युवाओं पर अखण्डनीय प्रभाव पर टिप्पणी की थी।

१९२० के दशक के अन्तिम वर्षों में डॉ. दत्त के जवाहरलाल नेहरू के साथ कार्य करने के कई अवसर आए। नेहरू अपनी यूरोप की यात्रा के बाद वैज्ञानिक समाजवाद में विशेष रुचि ले रहे थे और किसानों तथा श्रमिकों के मसलों में अपने आपको तीव्र रूप से नियोजित कर रहे

थे। १९२७ में कलकत्ता में समाजवादी युवा कांग्रेस का अधिवेशन हुआ, जिसके डॉ. दत्त विशेष आयोजक थे एवं नेहरू अध्यक्ष हुए। डॉ. दत्त ने सामाजिक आन्दोलन को पुरातन क्रान्तिकारी आन्दोलन के, जिसके वे स्वयं एक महत्त्वपूर्ण चरित्र थे, कल्पनाशील झोकों से परिष्कृत करने में अहम भूमिका निभाई। Mazzini से मार्क्स तक की काफी दूरी तय की जा चुकी थी।

समाजवाद को मुख्यधारा की राजनीति में केन्द्रित करना

१९२७-२८ में कई स्थानों पर श्रमिक असन्तोष के मामले आए – जैसे बाम्बे कपड़ा मिल, रेलवे, जमशेदपुर और बंगाल में जूट कारखाने। इसके कारण ब्रिटिश शासन ने दमनकारी नीति अपनाई और संगठित श्रमिक आन्दोलन को कुचलने की कोशिश की। बहुत सारे उभरते हुए कम्युनिस्ट तथा श्रमिक नेताओं की गिरफ्तारियाँ हुईं। ये सारा प्रकरण और चार वर्ष चले कानूनी मामले को मीरट ट्रायल के नाम से जाना गया। जो लोग गिरफ्तार हुए, उनमें कम्यूनिस्ट और श्रमिक आन्दोलन के कई शुरूआती दिग्गज जैसे मुजफ्फर अहमद, पी.सी. जोशी, एस.ए.डांगे, एस.वी. घाटे और अंग्रेज फिलिप स्प्रैट (जो भारतीय नागरिकता लेकर भारत में ही बसे गये) और एच.एल. हचीसन (जो बाद में विख्यात ब्रिटिश लेबर नेता बने)। इन गिरफ्तारियों के बाद डॉ. दत्त ने जवाहरलाल नेहरू को जो उस समय कांग्रेस वर्किंग कमिटी के महासचिव थे, को एक व्यक्तिगत अपील भेजी। इसमें उन्होंने गिरफ्तार हुए लोगों को कांग्रेस की ओर से कानूनी सहायता देने की बात रखी। नेहरू ने प्रत्युत्तर में इस मसले में अभियुक्तों के साथ सहानुभूति अभिव्यक्त की और किस तरह से कानूनी सहायता दी जा सकती है, ऐसे कुछ सुझाव दिये। बाद में मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक डिफेन्स कमिटी बनी। डॉ. दत्त ने अभियुक्तों की मेरठ डिफेन्स फंड की ओर से भी सहायता की, जिसे विशेष रूप से स्थापित किया गया था।

डॉ. दत्त ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन को अपना समर्थन दिया और नमक कानून अवज्ञा और दूसरे जन आन्दोलनों में हिस्सा लिया। उनको इस दौरान गिरफ्तार भी किया गया। इतिहासकार पंचानन शाह ने स्पेशल ब्रांच ऑफिस कलकत्ता के एक नोट का सन्दर्भ देते हुए डॉ. दत्त और उनके सहयोगियों के सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान की गयी कुछ गतिविधियों के बारे में जानकारी पाई। इस नोट में जो कुछ चीजें लिखी गयी थीं, वे थीं –

* औद्योगिक और यातायात कर्मियों के द्वारा एक सार्वजनिक हड़ताल (General Strike) करना।

* बन्दरगाह और यातायात कर्मियों के द्वारा नमक और बाद में बाकी सारे अंग्रेजी माल की माल-ढुआई से मना करना।

* किसानों को यूनियनों में संगठित करना और उनके द्वारा यूनियन बोर्ड कर-व्यवस्था के विरुद्ध सत्याग्रह चलाना।

बहुत कम लोगों को ज्ञात है कि डॉ. दत्त की १९३१ की कराची कांग्रेस, जो मौलिक अधिकार के प्रस्ताव के लिए विख्यात हुई, उसमें डॉ. दत्त ने योगदान दिया था। डॉ. दत्त और उनके सहयोगियों ने एक मसौदा तैयार करके जवाहरलाल नेहरू को दिया था। यह एक महत्त्वपूर्ण मसौदा था, जिस पर गाँधीजी ने भी अपनी टिप्पणी एवं राय दी और बाद में उस सभा में इसे पारित किया गया। पारित प्रस्ताव में कई महत्त्वपूर्ण बिन्दु थे, जो डॉ. दत्त के बनाए हुए मसौदे में शामिल थे।

१. श्रमिकों के अधिकार की रक्षा हेतु एक ऐसी सुव्यवस्था की जाय, जिसके तहत उनकी समस्याओं का समुचित समाधान मध्यस्थता के द्वारा किया जाए।

२. औद्योगिक श्रमिकों की आजीविका हेतु एक निश्चित वेतन की व्यवस्था, कार्य हेतु उनकी सीमित समयावधि, वृद्धावस्था, बीमारी तथा बेरोजगारी में आर्थिक अभाव से जूझने में सहायता प्रदान करना।

३. कृषिदास-प्रथा से श्रमिकों की मुक्ति अथवा कृषिदास-प्रथा को प्रोत्साहन देनेवाली शर्तों से भी श्रमिकों की मुक्ति।

४. महिला श्रमिकों की रक्षा करना, जिसमें विशेषत: उनके गर्भावस्था एवं उसके पश्चात् की अवधि में पर्याप्त दिनों के लिए अवकाश का प्रावधान।

५. पाठशाला जाने की आयुवाले बच्चों को बाल-श्रमिक की तरह नियुक्त करने पर निषेध।

डॉ. दत्त के तैयार किये गये मसौदे में हड़ताल के अधिकार को भी शामिल किया गया था। किन्तु डॉ. दत्त अपने संस्मरणों में लिखते हैं कि गाँधीजी के कहने पर हड़ताल के अधिकार को शामिल नहीं किया गया और उसकी जगह arbitration की बात लाई गयी। इसी तरह, 'प्रधान उद्योगों पर शासन का स्वामित्व', इस बात को संशोधित

करके 'शासन का नियन्त्रण', यह बात पारित प्रस्ताव में रखी गयी। नेहरू ने अपनी आत्मकथा में कराची प्रस्ताव का उल्लेख किया है। परन्तु डॉ. दत्त अपने संस्मरणों में इस बात पर निराशा व्यक्त करते हैं कि नेहरू ने इस प्रस्ताव के पीछे योगदान देनेवालों का कोई उल्लेख नहीं किया। सुभाषचन्द्र बोस ने भी कराची कांग्रेस में श्रम को लेकर प्रस्ताव के सन्दर्भ में कहा कि उसे शामिल किया गया था, कांग्रेस में वामपंथियों को शान्त रखने के लिये किया गया था।

श्रमिक मंचों और ट्रेड यूनियन आन्दोलन में

डॉ. दत्त १९३७ से १९४० तक लगातार चार वर्ष बंगाल प्रादेशिक कृषक सभा के वार्षिक अधिवेशनों की अध्यक्षता करते रहे। गरीब जनसाधारण के लिए काम कर रहे युवा कार्यकर्ता जब कानूनी दाँव-पेंच में फँस जाते थे, तब डॉ. दत्त उनकी भरसक सहायता करते थे। वे स्वयं कई ऐसे मामलों में उनकी जमानत कराते थे।

१९२७ में बने कलकत्ता ट्राम-कर्मचारी संगठन के डॉ. दत्त संस्थापकों में से थे। उस समय कलकत्ता-ट्रामवे अंग्रेजी कम्पनी थी। उनके कुशल नेतृत्व में कलकत्ता ट्रामवे यूनियन को अत्यन्त प्रगतिशील संगठन की तरह देखा जा सकता था, जिसने केवल अपने अंग्रेज मालिकों के विरुद्ध ही नहीं, बल्कि अंग्रेजी तन्त्र-व्यवस्था के विरुद्ध कई अभियानों में हिस्सा लिया। वे ठेला गाड़ी संगठन (Carter's Union) के भी अध्यक्ष रहे और वे ठेला गाड़ी चालकों और पथ विक्रेताओं के हितों की रक्षा में हमेशा तत्पर रहे। १९२७ में खड़गपुर में घटी बेंगाल-नागपुर रेलवे हड़ताल (जिसका नेतृत्व वी.वी. गिरी ने किया, जो बाद में भारत के राष्ट्रपति बने) में डॉ. दत्त ने भरपूर सहयोग किया और वे श्रमिकों का मनोबल बढ़ाने के लिए कई दिन खड़गपुर में रहे। उन्होंने जमशेदपुर के औद्योगिक क्षेत्र में श्रमिक-संगठनों के विकास और पुष्टिकरण के लिए भरसक प्रयत्न किया। डॉ. दत्त अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस के १९२० के दशक के अन्तिम वर्षों में लगातार दो साल उपाध्यक्ष रहे, जिसमें पहले वर्ष जवाहरलाल नेहरू अध्यक्ष रहे और दूसरे वर्ष सुभाषचन्द्र बोस थे। वे Red Aid Society (जो अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस से अलग हुआ एक घटक था) के कोषाध्यक्ष रहे। उन्होंने श्रमिक संगठन में कानूनी कठिनाइयों में फँसे अभियुक्तों की मदद के लिए रेड ऐड सोसाइटी की भी बहुत सहायता की।

सुभाषचन्द्र बोस

१९३० के दशक में मई दिवस की सभाएँ और जुलूस बंगाल और कुछ सीमा तक बाकी भारत के वार्षिक केलैण्डर में महत्त्वपूर्ण दिन बन गये। डॉ. दत्त इन कार्यक्रमों में वक्ता रहते थे और कई जनसभाओं की अध्यक्षता भी करते थे।

स्वतन्त्रता की ओर

२२ जून, १९४१ में सोवियत संघ के ऊपर हुए हमले के बाद जो Friends of Soviet union नामक संगठन बनाया गया, उसके डॉ. दत्त प्रथम अध्यक्ष रहे। उन्होंने सोवियत संघ के मध्य एशियाई प्रान्तों में द्रुत सकारात्मक परिवर्तन देखा, जैसे शिक्षा में विशेष सुधार, जिससे उन्हें बहुत आशा मिली। इस कालखण्ड के अपने भाषणों में डॉ. दत्त ने सोवियत संघ की सकारात्मक सामाजिक उपलब्धियों को प्रसारित करने का प्रयास किया, जिससे हमारा देश भी सोवियत दृष्टान्त से कुछ ग्रहण कर सके।

डॉ. दत्त को जन-साहित्य के विकास में विशेष रुचि थी। वे इसके बारे में १९३६ में बने Progressive Writers' Association के गठन के पहले से ही लिख रहे थे। वे Progressive writers' Association और Anti Fascists' Writers' and Artists Association में नियमित रूप से भाग लेते थे। वे चाहते थे कि साहित्यकार आधुनिक युग के लिए एक नए साहित्य की रचना करें, जो उदात्त हो और साथ-ही-साथ जनसाधारण के जीवन का प्रतिबिम्ब हो। उन्होंने इस पर बल दिया कि जन साहित्य आन्दोलन का एक उद्देश्य यह भी होना चाहिए कि विश्व साहित्य की श्रेष्ठ कृतियों को विभिन्न भारतीय भाषाओं में उच्च स्तरीय अनुवाद करके मुद्रित किया जाए। उनके एक शिष्य रेवती बर्मन, जो बाद में एक विशिष्ट मार्क्सवादी विद्वान हुए और बर्मन पब्लिशिंग हाऊस की स्थापना की। यह पब्लिशिंग हाऊस बाद में मार्क्सवादी प्रकाशन जैसे नेशनल बुक एजेन्सी और पिपल्स पब्लिशिंग हाऊस के लिए एक अग्रदूत के समान था।

१९४३ के बंगाल दुर्भिक्ष में डॉ. दत्त ने त्राणकार्यकर्ताओं

की वाहिनी बनाई और आर्थिक सहायता एकत्रित करके भूखे लोगों के लिए सामुदायिक रसोइया, दैनन्दिन आवश्यकता की सामग्रियों की व्यवस्था की। डॉ. दत्त ने कम्युनिस्ट पार्टी की भारत छोड़ो आन्दोलन का विरोध करने की नीति का सख्त विरोध किया। कम्युनिस्ट पार्टी ने हिटलर के सोवियत संघ के हमले के बाद भारत छोडो आन्दोलन का विरोध किया था। Communist Party of Great Britain (CPGB) एवं Comintern के निर्देश पर पार्टी ने अपनी दृष्टि और रूख को बदला, जो पहले महायुद्ध के दोनों पक्षों से समान दूरत्व की नीति थी, वह सोवियत संघ पर हुए हमले के बाद महायुद्ध जनयुद्ध (People's War) के रूप में हो गयी।

देश के स्वतन्त्र होने के बाद वे कम्युनिस्ट पार्टी के कई घटकों से, जो स्वतन्त्रता को नकली मानते थे और 'ये आजादी झूठी है' का नारा देते थे, उनके मतों के कठोर विरोधी थे। वे नेहरू के नेतृत्व में सरकार को राष्ट्रीय सरकार मानते थे और चाहते थे कि स्वाधीन भारत में सभी मिलकर गरीबों तथा शोषितों की परिस्थिति सुधारने हेतु कार्य करें। इस सन्दर्भ में उनका मत कम्युनिस्ट पार्टी P.C. joshi line के अधिक निकट था, बजाय Ranadive Line जो प्रधान Party Line के रूप में उभर कर आई। जैसाकि मध्यस्थतावादियों के साथ अक्सर होता है, कांग्रेसी डॉ. दत्त को एक दृढ़ वामपन्थी और परम्परागत कम्युनिस्ट एक नरम मध्यपन्थी के रूप में देखते थे।

पाण्डित्य एवं लेखन कार्य

डॉ. दत्त ने कई सारे ग्रन्थ, लेख एवं शोध-पत्रों की रचना की थी। डॉ. दत्त के द्वारा लिखे हुए दो बांग्ला ग्रन्थ – 'भारतेर द्वितीय स्वाधीनता संग्राम' एवं 'अप्रकाशित राजनीतिक इतिहास' से हमें स्वदेशी आन्दोलन एवं बर्लिन कमिटी कालखण्ड के दौरान क्रान्तिकारी गतिविधियों की बहुत-सी महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है। ये ग्रन्थ बाद के इतिहासकारों के लिए महत्त्वपूर्ण संसाधन सदृश हो गये। डॉ. आर. सी. मजुमदार ने अपने तीन खण्डों में लिखी गयी 'History of Indian Freedom Movement' में इन दोनों ग्रन्थों को तत्कालीन क्रान्तिकारी आन्दोलन की जानकारी के लिए सबसे स्पष्ट एवं उपयोगी स्रोत माना है। तुलना में उस समय के अन्यान्य ब्यौरे काफी धुँधले और परस्पर विरोधी होते थे। इतिहासकार सुमित सरकार अपने ग्रन्थ 'Swadeshi Movement in Bengal' ...'' में भी डॉ. दत्त के ग्रन्थों को तत्कालीन जानकारी हेतु एक महत्त्वपूर्ण स्रोत मानते हैं।

उन्होंने भारतीय समाज, इतिहास, कला एवं संस्कृति पर मार्क्सवादी दृष्टिकोण से बहुत-से विश्लेषणात्मक ग्रन्थ लिखे। उनके महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों में 'Studies in Indian Social Polity,' 'Dialectics of Hindu Ritualism, Dialectics of Land Economics of India', 'Indian Art in Relation to Culture' शामिल हैं। उन्होंने अपने अमेरिकी प्रवास के संस्मरण 'आमार अमेरिकार अभिज्ञता' भी लिखा। डॉ. दत्त ने Fredrich Engles का बांग्ला में अनुवाद भी किया था।

डॉ. दत्त ने जर्मन अकादमिक पत्रिकाओं में जैसे – 'German Encylopaedia of Science' एवं 'Anthropos' में भी शोध-लेख प्रकाशित किये। भारत में प्रकाशित सबसे पहले मानव-विज्ञान की पत्रिकाओं में से एक 'Man in India' में वे नियमित रूप से लिखा करते थे। एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ जो निश्चित रूप से लम्बे समय तक प्रासंगिक रहेगा, वह था विवेकानन्द पर उनका अध्ययन – 'Swami Vivekananda Patriot – Prophet' एक ऐसा विषय जिस पर वे विशेष रूप से लिखने के योग्य अधिकारी थे।

यह कहना गलत नहीं होगा कि परवर्ती काल के अकादमिक क्षेत्र में डॉ. दत्त के कार्य का मूल्यांकन उस तरह से नहीं किया गया, जैसाकि किया जाना चाहिए था। भारतीय समाज और संस्कृति को मार्क्सवादी ढाँचे के विश्लेषण करनेवाले वे सबसे पहले बुद्धिजीवी रहे। ये सब डी.डी. कोशम्बी जैसे मार्क्सवादी विद्वान के इस क्षेत्र में आने के काफी पहले की बात है। इसी तरह उनका जाति पर कार्य भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं था। उन्होंने जो जातीय शक्ति के धाराप्रवाह विचारों को प्रस्तुत किया था, वह भी एम.एन. श्रीनिवास के उस पर कार्य करने के बहुत पहले था।

स्वामी विवेकानन्द के प्रति उनके विचार

डॉ. दत्त सर्वप्रथम १९२८ में विवेकानन्द पर एक पुस्तिका लाए थे, जो उनकी उक्तियों का एक संकलन था। यह पुस्तिका युवा आन्दोलन के उनके साथियों के अनुरोध पर प्रकाशित की गयी थी। उसका शीर्षक था 'Vivekananda - A Socialist'. उन्होंने बाद में कहा कि पुस्तक का शीर्षक कई पुराने लोगों के सामने परिहास का कारण बना, जो स्वामीजी को एक परम्परागत ढर्रे के हिन्दू

पुनरुत्थानवादी के रूप में ही देखते थे। पर जन आन्दोलन के युवा कार्यकर्ताओं में इस पुस्तिका ने हलचल मचा दी। उन्हें स्वामीजी के अन्दर अपने-अपने कार्य के लिए समर्थन का एक स्रोत मिला। ठीक जैसे राष्ट्रीय क्रान्तिकारियों ने बीते दशकों में उनसे प्रेरणा ली। किन्तु डॉ. दत्त का अपने अग्रज के ऊपर सुविख्यात एक व्यापक ग्रन्थ १९५३ में, स्वामीजी के महाप्रयाण के ५ दशकों बाद आया। इसका शीर्षक था – 'Vivekananda Prophet Patriot'.. वह विवेकानन्द के निर्माण में ऐतिहासिक एवं समाजिक शक्तियाँ एवं उनके चिन्तन की सबलता को लेकर एक गहरा अध्ययन था।

द्वंद्वात्मक भौतिकवाद ('Dialectical Materialism') को आधार बनाकर भारतीय समाज का आधुनिक युग में अनुप्रवेश का विश्लेषण करते हुए डॉ. दत्त ग्रन्थ आरम्भ करते हैं। वे राममोहन राय का योगदान, ब्राह्म आन्दोलन एवं १९वीं शताब्दी के बाद के समाज-सुधार जैसे ऐतिहासिक पर्व का विश्लेषण करते हैं। वे विवेकानन्द को ऐतिहासिक आवश्यकता तथा भारतीय इतिहास की गति में अहम् शक्ति के रूप में मानते हैं। वे विवेकानन्द के परिवार एवं सामाजिक परिवेश का ब्यौरा देते हैं। (उनके भाई होने के नाते बृहत् पारिवारिक परिवेश और उसका इतिहास जानने में वे सुयोग्य थे।)

वे विवेकानन्द के निर्माण में बृहत्तर समाज के तात्त्विक कारण की मीमांसा करते हैं। अन्त में वे विवेकानन्द के बहुमुखी योगदान की चर्चा करते हैं, जैसे उनके द्वारा देश को नया आदर्श देना, उनका समाज-तात्त्विक और धार्मिक विचार तथा सबसे आवश्यक रूप से, उनका तीव्र समतावादी दृष्टिकोण।

डॉ. दत्त ने इसे दर्शाया कि क्यों उन्हें लगता है कि देश को विवेकानन्द के विचारों पर ध्यान देने की आवश्यकता है। 'भारत आज एक स्वतन्त्र लोकतान्त्रिक गणतन्त्र है। भारत एक धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र और अपनी तरह से विश्व राजनीति में अपना स्थान बना रहा है। पर देश के भीतर राष्ट्रीय आदर्श को लेकर विभ्रान्ति है। जो नया भारत बन रहा है, उसका चित्रण करने में कोई भी सक्षम नहीं है। फिर लोकतन्त्र के नाम पर पूँजीवादी लोकतन्त्र प्रतिष्ठित हो रहा है, जो व्यावहारिक क्षेत्र में पूँजीपतियों के राज की तरह उभर रहा है। यहाँ भविष्य के नये भारत के स्वामीजी का दर्शन प्रस्तुत किया जा रहा है, जो कार्यकर्ताओं को राष्ट्र-निर्माण में प्रेरणा देगा। यह आशा की जाती है कि विदेश से चाहे जो भी मत एवं सिद्धान्त आएँ, स्वामीजी की ये सलाह नये भारत के प्रति धुँधली दृष्टि को साफ करने में सहायक होगी।'

डॉ. दत्त को दृढ़ विश्वास था कि विवेकानन्द के अन्दर भारत को एक ऐसा आदर्श मिलेगा, जो एक ही साथ उदार, युक्तिसंगत, समतावादी और क्रियाशील होगा : ''अब समय आ गया है कि राष्ट्रीय आदर्श को स्थिर करने का चिन्तन एवं एकबद्ध प्रयास किया जाए, जिससे भारत आज के विश्व इतिहास में अपनी जगह बना सके। यह आन्दोलन स्वामीजी ने बहुत पहले दिया था। हमारे युवाओं को देश की आवश्यकतानुसार आदर्श की खोज में इधर-उधर दौड़ने की आवश्यकता नहीं है। विदेशी विचारधाराएँ, जो भारत की भूमि पर कभी-भी जड़ नहीं पकड़ सकती हैं के पीछे जाना मृगतृष्णा के पीछे भागने जैसा होगा। सच्चा आदर्श हाथों के बहुत समीप है एवं भारत की मिट्टी का ही है। हमारे युवाओं को विदेशी आदर्शों की मन्त्रमुग्धता से अपने मनों को वापस खींचना होगा। स्वतन्त्र भारत को दासत्व की मानसिकता के भाव को झटक देना होगा।''

डॉ. दत्त के अनुसार विवेकानन्द में भारत की लम्बे समय से अन्तर्मुखी और दबी ऊर्जा ने एक बहिर्प्रकाश पाया। वे कहते थे कि विश्व से भारत का सकारात्मक एवं आत्मविश्वासपूर्ण सम्बन्ध हो। विवेकानन्द ने पाश्चात्य से लौटकर १८९७ में मद्रास में दिये गये भाषण में कहा था, ''सारा पश्चात्य जगत् मानो एक ज्वालामुखी पर स्थित है, जो कल ही फूटकर उसे चूर-चूर कर सकता है। उन्होंने सारा जगत छान डाला, पर उन्हें तनिक भी शान्ति नहीं मिली। उन्होंने इन्द्रिय-सुख का प्याला पीकर खाली कर डाला, पर फिर भी उससे उन्हें तृप्ति नहीं मिली। भारत के धार्मिक विचारों को पश्चात्य देशों की नस-नस में भर देने का यही समय है।''

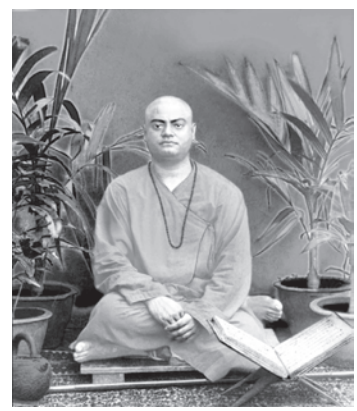

विवेकानन्द के द्वारा बोलने के पाँच दशक बाद डॉ. दत्त को भी यह लगा – ''स्वतन्त्र भारत का विश्व को देने के लिए एक सन्देश है। देश काल की प्रबल क्रान्ति की मोड़

पर खड़ा है, अब वह एक निष्क्रिय सभ्यता के समान नहीं रहेगा। उसे याद रखना होगा कि भारतीयों में श्रेष्ठ बुद्ध ने एक समय संसार-त्यागी युवा भारतीयों को कहा था : 'जाओ भिक्षुओ और इस महिमामय मत का प्रचार करो – **बहुजन हिताय बहुजन सुखाय**।''

डॉ. दत्त को जो सबसे अधिक मुग्ध करता था, वह था उनका मौलिक समतावादी भाव। उन्हें लगा कि विवेकानन्द के अनुयायियों ने भी इसकी उपेक्षा की। विवेकानन्द ने उनसे पहले के और उनके बाद के किसी भी व्यक्ति से भी अधिक प्रत्यक्ष और प्रखर रूप से भारत के कठोर परिश्रमी श्रमिक वर्ग के शोषण की बात सामने रखी। डॉ. दत्त हमारे सामने विवेकानन्द के उस आघात और रोष-बोध को पूरे प्राबल्य के साथ रखते हैं। 'तुम ऊँची जातवाले क्या जीवित हो? तुम लोग हो दस हजार वर्ष पीछे के ममी !! 'जिन्हें सचल श्मशान कहकर तुम्हारे पूर्व-पुरुषों ने घृणा की है, भारत में जो कुछ वर्तमान जीवन है, वह उन्हीं में है और 'सचल श्मशान' हो तुम लोग। स्वप्न-राज्य के आदमी हो तुम लोग, अब देर क्यों कर रहे हो? भूत-भारत शरीर के रक्त-मांसहीन कंकालकुल, तुम लोग क्यों नहीं जल्दी से धूलि में परिणत हो वायु में मिल जाते? तुम लोगों की अस्थिमय अँगुलियों में पूर्वपुरुषों की संचित कुछ अमूल्य अंगुठी हैं, तुम्हारे दुर्गन्धित शरीरों को भेंटती हुई पूर्वकाल की बहुत-सी रत्नपेटिकाएँ सुरक्षित हैं। इतने दिनों तक उन्हें दे देने की सुविधा नहीं मिली, अब अंग्रेजी राज्य में, अबाध विद्या-चर्चा के दिनों में, उन्हें उत्तराधिकारियों को दो, जितने शीघ्र दे सको, दे दो। तुम लोग शून्य में विलीन हो जाओ और एक नवीन भारत निकल पड़े।''

विवेकानन्द में भारत के श्रमिक वर्गों की जन्मजात दुख झेलकर भी बचे रहने की क्षमता के प्रति सच्ची श्रद्धा थी। ''भारत के हमेशा से पैरों तले कुचले हुए श्रमजीवियो ! तुम लोगों को मैं प्रणाम करता हूँ।'' उन्होंने कहा था। वे जानते थे कि वह समय आ रहा है, जब ये चिरन्तन दुख-कष्ट सहनेवाले उठ खड़े होंगे और जगत् को हिला देंगे : 'इन लोगों ने सहस्र वर्षों तक नीरव अत्याचार सहन किया है, उससे पाई है अपूर्व सहिष्णुता। सनातन दुख उठाया, जिससे पाई है अटल जीवनी शक्ति। ये लोग मुट्ठी भर सत्तू खाकर जगत को उलट दे सकेंगे। आधी रोटी मिली, तो तीनों लोकों में इनका तेज न अटेगा? ये रक्तबीज के प्राणों से युक्त हैं।'

डॉ. दत्त के अनुसार श्रमिकों को केन्द्र में रखकर एक नयी सभ्यता को दृष्टि देने में विश्व-इतिहास में स्वामी विवेकानन्द का स्थान अग्रणी था। डॉ. दत्त कहते हैं, 'श्रमिक जनसाधारण के द्वारा निर्मित सभ्यता की सबसे पहली भविष्यवाणी स्वामी विवेकानन्द ने १९०० के भी पहले की थी। क्या तब प्लेखानॉव और लेनिन ने एक श्रमजीवी राष्ट्र जिसकी अपनी सभ्यता भी होगी का स्वप्न भी देखा था? क्या सन यात सेन ने इसका स्वप्न भी देखा था? ट्रॉड्स्की ने कहा है कि लेनिन ने १९०५ में श्रमजीवियों एवं कृषकों के लोकतान्त्रिक अधिनायकत्व (Democratic Dictatorship of the Proletariat) का तत्त्व परिकल्पित किया था।' विवेकानन्द ने ये भविष्यवाणी भी की थी कि रूस और चीन में श्रमिकों का विद्रोह होगा।

डॉ. दत्त लिखते हैं कि विवेकानन्द ने यह भविष्यवाणी भी की थी : ''एक समय ऐसा आएगा, जब शूद्रत्व सहित शूद्रों का प्राधान्य होगा। अर्थात् आजकल जिस प्रकार शूद्र जाति वैश्यत्व अथवा क्षत्रियत्व प्राप्त कर अपना बल दिखा रही है, उस प्रकार नहीं, वरन् अपने शूद्रोचित धर्म-कर्मसहित समाज में आधिपत्य प्राप्त करेगी।'' इस प्रकार डॉ. दत्त कहते हैं कि विवेकानन्द ने श्रमजीवियों के नेतृत्व (Dictatorship of the Proletariat) की बात को बोलश्विकों का नारा बनने के काफी पहले पकड़ लिया था।

किन्तु डॉ. दत्त ने दुःख से इस बात को कहा कि ये सारे आह्वान बहरे कानों पर पड़े। वे कहते हैं : 'सामन्तवाद के पाश में जकड़े हुए भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग अपने श्रेणीगत भाव से निकल कर नहीं आ पाये और एक नई सामाजिक व्यवस्था की दृष्टि नहीं रख पाये।' दुःख के स्वर में वे कहते हैं : 'स्वामी विवेकान्द इस अन्धकारमय भारत देश में काफी समय पहले ही आ गये।' डॉ. दत्त और कहते हैं, 'एक ओर हम अमेरिकी और विदेश की आर्थिक पाश में फँसे हैं, तो दूसरी ओर सोवियत संघ से घनिष्ठता की।' पर उन्हें यह लगता था कि विवेकानन्द में बहुत बड़ा संसाधन है, जो कि इस द्वन्द्व की निष्पत्ति करने में सहायक होगा। निष्कर्षस्वरूप डॉ. दत्त ने ये भी कहा : 'स्वामी विवेकानन्द न तो एक मार्क्सवादी थे और न ही एक अर्थशास्त्री। पर उन्होंने अपनी भविष्य दृष्टि से समय की वह अवस्था देखी, जिससे भारत में जनसाधारण की संस्कृति पर आधारित एक जातिविहीन एवं श्रेणीविहीन समाज का निर्माण होगा, जिससे भारतीय लोगों

का उत्थान होगा। इस नये भारत से ही प्राच्य और पाश्चात्य का समन्वय होगा, जैसा कि वे चाहते थे। ये अभी एक स्वप्न ही है, पर यह भारत में फलित क्यों नहीं हो सकता? भारत ने अपनी राष्ट्रीय क्षमता अतीत और वर्तमान दोनों में दिखाई है, उसी में हमारी आशा, भविष्य की वृद्धि और समृद्धि निर्भर करती है। देश को स्वतन्त्र भारत के परिप्रेक्ष्य में स्वामी विवेकानन्द की कार्य-योजना की ओर चिन्तन करना चाहिए और भविष्य में उसे क्रियान्वित करना चाहिए।'

अन्तिम कुछ वर्ष

डॉ. दत्त अपने बड़े भाई महेन्द्रनाथ (जो उनसे ११ वर्ष बड़े थे) के साथ अपने पैतृक घर में कुछ और किरायेदार परिवारों के साथ रहते थे। उन दोनों का भोजन भी सामान्यत: किरायेदार परिवारों से ही आया करता था। डॉ. दत्त ने स्वतन्त्र भारत की सरकार से स्वतन्त्रता सेनानी पेन्शन को ठुकरा दिया। तप, सेवाभाव, त्याग एवं बलिदान के गुण तीनों भाइयों में विद्यमान थे। अत: डॉ. दत्त ने भी नाम-यश की चाह और अन्यान्य जागतिक सुखों की कभी परवाह नहीं की, कोई पद और प्रतिष्ठा की तो बात ही नहीं आती थी। किसी रोग या अस्वस्थता के समय दोनों भाईयों के चाहनेवाले लोग मदद का हाथ बढ़ा देते थे। महेन्द्रनाथ ८७ वर्ष की उम्र में १९५६ में दिवंगत हुए, जब पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री एवं स्वनामधन्य चिकित्सक डॉ. विधानचन्द्र राय स्वयं आकर उनकी चिकित्सा कर रहे थे। शिमुलिया के दत्त भाइयों में कनिष्ठ भूपेन्द्रनाथ का प्रयाण १९६१ में हुआ। विवेकानन्द के समान वे भी एक समन्वयवादी रहे, जिन्होंने किसी विचारधाराजनित कारण से कोई सरल बौद्धिक स्थान नहीं लिया। अपने ज्येष्ठ भाई की तरह ही उन्हें भी भारतीय सभ्यता में जो कुछ ऐतिहासिक रूप से श्रेयस्कर था, उसके प्रति सच्चा गर्व-बोध था, किन्तु उसके दोष एवं त्रुटियों को भी उन्होंने स्वीकारा और उसे दूर करने पर चिन्तन किया और निश्चित रूप से विवेकानन्द की तरह ही उन्होंने कठिन परिश्रमी जनसाधारण को अपने मानसपटल के केन्द्र में इस आशा से रखा कि एक ऐसा समय आएगा, जब उनके साथ न्याय होगा। देशभक्त तो वे थे ही, किन्तु उनकी देशभक्ति निरन्तर मननवादी थी, एवं जनसाधारण पर केन्द्रित थी। ***(समाप्त)*** ○○○

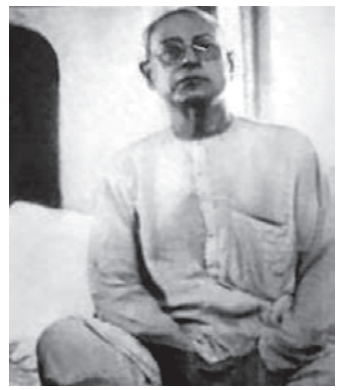

भूपेन्द्रनाथ दत्त

पृष्ठ २५८ का शेष भाग

पुरी में श्रीजगन्नाथजी को माधव तथा विमलादेवी को माँ दुर्गा के रूप में मानते हैं। उड़िया समाज में गृहप्रवेश के समय दुर्गा-माधव की पूजा अनिवार्य होती है। उनके अधिकतर घरों के प्रवेश-द्वारों पर या दिवारों पर दुर्गामाधव का चित्र अंकित रहता है। पुरी-क्षेत्र पहले विमला क्षेत्र के नाम से जाना जाता था। यह क्षेत्र ५१ शक्तिपीठों में से एक है। प्रत्येक शक्तिपीठ की रक्षा एक भैरव करते हैं और पुरी में जगन्नाथजी ही भैरव हैं। फिर जगन्नाथजी अपनी शक्ति योगमाया माँ दुर्गा के साथ गुप्त यात्रा पर जाते हैं, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

जगन्नाथजी के आविर्भाव के पश्चात् विमलादेवी उन्हें वहाँ स्थान देने के लिए इस शर्त पर राजी हुईं कि जो भोग जगन्नाथजी को चढ़ाया जायेगा, उसे तत्पश्चात् विमलादेवी को भी चढ़ाया जायेगा। उसका आज भी पालन किया जाता है। जगन्नाथजी को अर्पण किया हुआ भोग विमलादेवी को चढ़ाये जाने पर ही वह महाप्रसाद कहलाता है।

आश्विन शुक्ल प्रतिपदा से विमलादेवी के मन्दिर में वाममार्ग की विशेष पूजा होती है। विमलादेवी को दुर्गापूजा के समय महाष्टमी के दिन दो बकरों की बलि भी दी जाती है।

शरद नवरात्रि-काल में मनाई जानेवाली यह गुप्त गुण्डिचा यात्रा भक्तों पर आशीर्वाद बरसाने और उनके मन से मतों-पंथों के मतभेद भुलाकर शत्रुता मिटाने का काम करती है।

दुर्गामाधव की पूजा की यह प्रथा राजा चोडगंगदेव के कार्यकाल में आरम्भ हुई थी। काँची मुहिम के पहले सरसेनापति ने दुर्गामाधव-पूजा आरम्भ की थी। भारत में सर्वत्र शिव-पार्वती की पूजा देखने को मिलती है, परन्तु दुर्गामाधव की पूजा जगन्नाथपुरी की विशेषता है। ○○○

सारगाछी की स्मृतियाँ (११६)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमशः प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

४-५-१९६४

नवीन नेत्र चिकित्सा वार्ड खुलेगा। इसके लिए भवन का निर्माण आरम्भ हो गया है।

महाराज – आज भवन बना रहे हैं, फिर कभी यह भूकम्प से गिर जाएगा। काशी का जो माहात्म्य-वर्णन मैं सुनता हूँ, उसमें सब पर विश्वास नहीं होता और फिर अविश्वास भी नहीं कर सकता। फिर भी इसमें कुछ विशिष्टता है, अन्यथा इतने महापुरुष, इतने लोग इसे इतना महत्त्व क्यों देते हैं ! किन्तु निर्माण से क्या लाभ हुआ ! अनन्त काल से ये तन-मन मुझे जला रहे हैं। कम से कम एक बार भी यदि मैं इस देह-मन को लेकर खेल सकूँ, तभी तो जन्म-मृत्यु सार्थक होगा।

अधिकांश लोग कर्म की उपेक्षा करते हैं। जो लोग सामने रहते हैं, उनके कार्यों में दोष-गुण तो रहता ही है। जो लोग कुछ नहीं करते हैं, वे दूर से वह सब देखते हैं और आलोचना करते हैं, वे अपने को बुद्धिमान समझते हैं। ऐसे लोगों की उन्नति नहीं होती।

५-५-१९६४

महाराज – मेरे इस तन-मन में आधा सुख है, आधा दुख है। यह शरीर कुछ सुख भी देता है और कष्ट भी देता है। इस मन में कितना सच्चिन्तन और फिर कितना व्यर्थ का चिन्तन होता है।

७-५-१९६४

आज अद्वैताश्रम (काशी) में गगन महाराज के देहान्त के उपलक्ष्य में भण्डारा है।

महाराज – यह जो भण्डारा है, यह गृहस्थ मानसिकता है, श्राद्ध की धारणा है। मेरे देहान्त के बाद यह सब न हो, इसलिए इसे लिखकर रख जाऊँगा।

किन्तु इसके माध्यम से संन्यास के आदर्श को स्थापित किया जाता है। योगी महाराज संन्यासी के देह की आरती करते हैं। इससे संन्यास का भाव जन सामान्य में प्रचारित होता है। जो लोग देखते हैं, उनका आत्म-कल्याण होता है। इससे संन्यासियों में भी आत्म-चेतना (self-consciousness) जागती है। भण्डारा आदि कार्यों से कोई कल्याण होता है कि नहीं, इसे मैं नहीं जानता, क्योंकि हम सभी यह मान लेते हैं कि संन्यासी मुक्त होगा ही। जैसे आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी से पास होकर आए हुए किसी व्यक्ति के बारे में यह मान लिया जाता है कि वह विद्वान है। श्रीमाँ ने ठाकुर के केश को तीर्थों में दे दिया था। चैतन्यदेव ने हरिदास के भंडारा के उपलक्ष्य में स्वयं उसी दिन आनन्द बाजार में भिक्षान्न ग्रहण किया था।

मेरे मरने के बाद और एक काम तुम्हें करना है। सोचता हूँ, उसे बताकर रखूँगा। वह भक्त हो गया है ! केवल कहता है – 'प्रभु-इच्छा'। अरे ! क्या हम सब यह नहीं जानते कि प्रभु की इच्छा से सब कुछ होता है। यदि कृपा ही सब कुछ है, तो रोगी की सेवा, शिक्षा देने का कोई अर्थ ही नहीं रहता। तब तो रामकृष्ण मिशन का ही कोई प्रयोजन नहीं रहता।

ठाकुर देखते थे कि उनके भीतर कोई नहीं है – मैं नहीं, मैं नहीं, तू ही तू ही। भीतर-बाहर सभी वे ही हैं, उनके ही प्रकाश का चिन्तन करके मन को स्थिर करना। दूसरा उपाय – निर्गुण ब्रह्म माया के बहाने यह जीव-जगत बने हैं। अथवा 'श्रुत्वाऽन्येभ्य उपासते।' शुद्धचित्त लोग स्वयं ही इष्ट के चिन्तन में तन्मय रहते हैं। वे लोग मरने पर भी नित्य लोक में जाएँगे, जहाँ भूख-प्यास, भोग-पिपासा नहीं है, जहाँ कोई द्वन्द्व नहीं है –

'मिटेगी आज सारी भूख और प्यास।
मिथ्या भ्रमण-आवागमन का होगा नाश।।'

पुरुषार्थ हेतु कोई प्रयत्न कर रहा है, इसे जानते ही यह समझना होगा कि उसे वह वस्तु चाहिए। तभी तो ईश्वर कृपा

होगी। वस्तु की आवश्यकता है, लेकिन निष्क्रिय होकर बैठे रहना, यह एक जीवन्मुक्त व्यक्ति के लिए ही सम्भव है।

एक व्यक्ति ने आकर शिकायत की, ''महाराज, यहाँ की विभिन्न घड़ियाँ भिन्न-भिन्न तरह की समय बताती हैं। इसके कारण कार्य में ठीक से योगदान कर पाना सम्भव नहीं होता।''

महाराज – मेरी इच्छा है कि बुद्ध महाराज से कहकर सभी घड़ियों को मिलाने के लिए दिन में दो बार उद्घोषणा की जाय। बाद में मैंने सोचकर देखा कि संसार के बारे में कुछ कहना शक्ति को व्यर्थ क्षय करना है। 'तुल्य निन्दा स्तुतिर्मौनी' भाव में रहना चाहिए। यह संसार तो तुम्हारे मन की सृष्टि है। मन नहीं रहने पर जगत् नहीं रहता। अतएव, अपने मन को सुधारने से ही जगत् शुद्ध होगा। 'जूता-आविष्कार' नामक कहानी एक महान नैतिक शिक्षा है।

दोपहर में एक व्यक्ति हाथ हिला-हिलाकर बहुत-सी बातें कह गया।

महाराज – रजोगुण का प्रताप देखो तो, स्वयं ही सबसे आगे रहता है। देखो न – कविता कहकर, श्लोक कहकर, कथा-कहानी कहकर पहले स्वयं को प्रस्तुत करता है। हमेशा यही प्रयास करता रहता है कि हाथ-पैर हिलाकर, कंठस्वर से और विभिन्न भाव-भंगिमा दिखाकर लोगों के सामने कैसे स्वयं को प्रस्तुत किया जाये।

दोपहर में महाराज के पास बैठकर गीता पाठ हो रहा था।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः।।

महाराज – जब मैंने यह श्लोक पहली बार पढ़ा था, तब इसमें एक प्रकार के कवित्व-रस का अनुभव हुआ था। किन्तु इसमें जो व्यावहारिक मूल्य है, उसे नहीं समझ सका था। तदुपरान्त थोड़ी चिन्तन की गहराई बढ़ने पर समझ में आया कि जिनकी बुद्धि परिपक्व नहीं है, वे लोग ऐसी सब चीजों को लेकर मतवाले रहते हैं, जो बुद्धिमान लोगों के लिए नितान्त तुच्छ होती हैं। मैंने देखा है कि जो परिश्रम करके नहीं खाते हैं, वे ताश खेलने से लेकर विविध प्रकार की क्रियाओं में समय बिताने का प्रयास करते हैं तथा तम्बाकू खाने से लेकर अनेक प्रकार के खाद्य पदार्थों का उपभोग करते हुए जीवन का भोग करते हैं। तब दूर खड़े रहकर यह सब देखकर यही सोचता था कि यदि इन्हें परिस्थितिवश विवश होकर भी कार्य करने का सौभाग्य प्राप्त होता, तो ये अपने जीवन का समुचित सदुपयोग कर पाते।

अन्ततः जब मुझे ज्ञात हुआ कि भारत के प्राचीन ऋषि-मुनियों के एक समूह को 'आरण्यक' नाम से अभिहित किया जाता था, तब समझ गया कि यह चिन्तन मनुष्य के क्रम-विकास का अन्तिम सौन्दर्य प्रकट कर रहा है। हमलोग समग्र विश्व में यही देखते हैं कि मनुष्य विविध-प्रकार के वेशों, परिधानों के द्वारा अपनी सभ्यता के प्रकार और परिमाण को दिखाता रहता है। किन्तु तोतापुरी एक कौपीन भी नहीं पहनते थे, क्योंकि सभी से सुपरिचित इस शरीर के किसी अंश को ढककर दूसरे अंश के सौन्दर्य-प्रदर्शन के सम्बन्ध में वे बिल्कुल ही सचेत नहीं थे। यही तो है, 'सा निशा पश्यतो मुनेः'। क्या ऐसा नहीं है? श्रीरामकृष्ण भगवत्प्रसंग के अलावा अन्य कोई चर्चा नहीं करते थे। बाह्य दृष्टि से जीव-कल्याण की इच्छा से कोई लौकिक बात कहने पर भी उनका उद्देश्य रहता – भगवत् तत्त्व के किसी विशेष पहलू को सुस्पष्ट करके दिखाना। श्रीमाँ कभी भी ऐसा कुछ भी नहीं करतीं या नहीं कहतीं थीं, जिससे मनुष्यों की दृष्टि में सर्वाधिक मूल्यवान इस 'मैं' की स्वल्पमात्र भी अभिव्यक्ति होती हो। यहाँ तक कि उनकी किसी उच्च अनुभूति के स्वल्पमात्र बाहर प्रकट होने पर जैसे माताएँ छोटे बच्चों को कुछ मिथ्या कहकर बात को टाल देती हैं, ठीक वैसे ही श्रीमाँ करती थीं। इसी प्रकार श्रीठाकुर के शिष्यों में से प्रत्येक के जीवन में समग्र मानव-जाति के कार्य और चिन्तन के विपरीत व्यवहारों को हमने अपनी आँखों से देखा है।

जब मैंने ठाकुर के शिष्य सारदानन्दजी और शिवानन्दजी को पहली बार देखा, तब उन्हें अति साधारण मनुष्य ही समझा था। मनुष्य जिन चीजों को मूल्यवान समझता है, इन लोगों में से कोई भी उन चीजों को स्वल्पमात्र भी आवश्यक नहीं समझता था।

मुमुक्षुओं के लिए तो जानने की एकमात्र बात यही है कि भूखे लोगों के लिए जो चीजें अति महत्त्वपूर्ण हैं, वे चीजें मुमुक्षुओं के किसी काम नहीं आएँगी। इसी बात को समझाने के लिए सभी देशों में भगवत्प्रेमियों ने विशाल साहित्य की रचना की है। मुमुक्षु को जीवन के छोटे-छोटे कार्यों से लेकर बड़े-बड़े कार्यों में केवल यही बात हमेशा

शेष भाग पृष्ठ २८६ पर

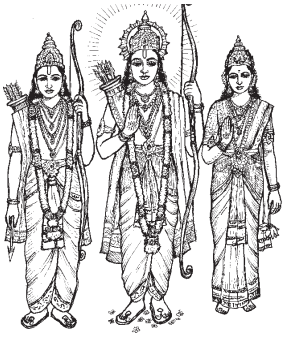

रामराज्य का स्वरूप (६/२)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

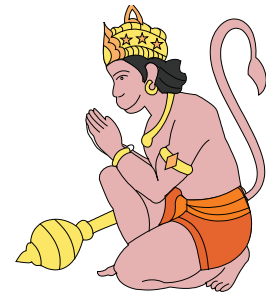

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९८९ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)

श्रीभरत की विलक्षणता यह है कि ये प्रसन्नता भी अपनी नहीं चाहते। वे जो साक्षात् परब्रह्म परमात्मा श्रीराम हैं, वे कुशलपूर्वक रहें। अब यह तो अद्भुत ही माँग है। पूजा की जा रही है शंकरजी की कि भगवान राम कुशल रहें। कुशलता की बात राम में आती है न ! विभीषणजी जब भगवान राम की शरण में गये, तो विभीषणजी से भगवान राम ने पूछ दिया, कुशल से तो हैं? तब विभीषणजी ने कहा – प्रभु, यह प्रश्न भूतकाल के विषय में है या वर्तमान काल के विषय में? अगर भूतकाल के विषय में है, तो यदि कुशल होता, तो यहाँ आता ही क्यों? और आपकी शरण में आने के बाद भी अगर कुशल शेष है, तो आप तो कुशलस्वरूप हैं, आपके पास आ जाने के पश्चात् फिर कुशल का प्रश्न ही कहाँ शेष रह जाता है? आपके दर्शन में ही तो परम कुशलता की अनुभूति है। तो विभीषणजी को श्रीराम के दर्शन से कुशलता की अनुभूति होती है। पर भरत यह अनुभव करते हैं, भरत की सुकुमार भावना यह है कि न, न ! हमें शंकरजी से प्रार्थना करनी है कि हमारे भगवान राम कुशलपूर्वक रहें।

यहाँ प्रेम की सुकुमारता है। अपने सुख की, स्वसुख की लेशमात्र भी कामना नहीं है। प्रेम की जो सर्वोत्कृष्ट परिभाषा है, वह यह है कि प्रेम को क्रिया के द्वारा परिभाषित नहीं किया जा सकता कि ऐसी क्रिया जिस व्यक्ति के जीवन में है, वह प्रेमी है। यह नहीं कि जो व्यक्ति जप कर रहा है, वह बड़ा भक्त है, बड़ा प्रेमी है। अब कई लोग तो तप करते रहे हैं और मन ही मन यही कहते रहते हैं कि हमारे उस विरोधी की मृत्यु हो जाये, उसका सत्यानाश हो जाये। तो क्रिया देखकर अगर भक्ति का निर्णय करें, तब तो ऐसे-ऐसे विचित्र भक्त मिलेंगे कि सर्वथा कलुषित भावनाओं से जिनका अन्त:करण ओतप्रोत है।

तब प्रेम की कसौटी क्या है? बोले, ज्यों-ज्यों स्वसुख की भावना कम होती जाय और कम होते-होते एक दिन ऐसी स्थिति आ जाये कि व्यक्ति में स्वसुख का लेश भी न रह जाये। देवर्षि नारद से प्रश्न किया गया कि प्रेम का लक्षण क्या है, तो उन्होंने कहा, क्रिया तो लक्षण नहीं है, पर **तत्सुखे सुखित्वम्** – प्रियतम के सुख में सुखी होना, यही सर्वोत्कृष्ट प्रेम का लक्षण है और यह सर्वोत्कृष्ट प्रेम श्रीभरत के चरित्र में है। यह पूजा-पाठ की क्रिया श्रीभरत के जीवन में एक साधारण गृहस्थ की भाँति होते हुए भी, श्रीराम की कुशलता के लिए उनके द्वारा की जानेवाली प्रार्थना उनके प्रेम के अनुकूल ही है।

इधर समाचार आ गया। गुरुदेव ने बुलाया है। श्रीभरत और शत्रुघ्न घोड़े पर सवार हुए और शीघ्रता से अयोध्या की ओर चल दिये। अयोध्या में यह समाचार फैल गया कि भरत शत्रुघ्न ननिहाल से लौटकर आ रहे हैं। अयोध्यावासियों के मन में श्रीभरत के प्रति एक विद्रोह की भावना है। यद्यपि अयोध्या के नागरिक कई वर्गों में बँटे हुए थे। एक वर्ग वह था, जिसकी धारणा यह थी कि भरत षड्यन्त्रकारी नहीं हो सकते। वह वर्ग अल्पसंख्या में था। एक वर्ग वह था, जिसकी धारणा यह थी कि जब तक कोई स्पष्ट प्रमाण न मिले, तब तक हम कैसे कहें कि भरत इस षड्यन्त्र में भागीदार हैं कि नहीं। तीसरा वर्ग, जो बहुत बड़ी संख्या में था, उसका निश्चित मत था कि निश्चित रूप से कैकेयी के कार्य के पीछे भरत का हाथ है। प्रारम्भ में जब अयोध्या में भरतजी ने प्रवेश किया, तो अयोध्या के नागरिकों ने बड़ी उपेक्षा का भाव उनके प्रति प्रगट किया। गोस्वामीजी ने वर्णन किया है। गोस्वामीजी लिखते हैं कि अयोध्या के नागरिक जब देखते हैं कि भरत आ रहे हैं, तब क्या करते हैं? जब किसी का दर्शन करने के लिये चलें, तो उसके पास पहुँचने की इच्छा

उत्पन्न होती है, पर वे लोग श्रीभरत को आते देखकर और दूर चले जाते हैं और दूर से केवल हाथ जोड़कर प्रणाम तो कर देते थे, पर इतनी दूर पर खड़े रहते थे कि जिससे भरतजी से बातचीत भी न हो सके या श्रीभरत आशीर्वाद भी न दे पाएँ। भरत कुछ बोलें भी नहीं। गोस्वामीजी ने उनकी मनोवृत्ति का वर्णन करते हुए रामायण में लिखा –

पुरजन मिलहिं न कहहिं कछु गवँहिं जोहारहिं जाहिं।
भरत कुसल पूँछि न सकहिं भय बिषाद मन माहिं।। २/१५८/०

अयोध्या के नागरिकों की यह दूरी देखकर श्रीभरत व्याकुल हो जाते हैं कि आज अयोध्या के नागरिक मुझसे दूर जाने की चेष्टा क्यों कर रहे हैं? अयोध्या का सारा वातावरण इतना द्वेषयुक्त क्यों है? इतना प्रतिकूल क्यों है? श्रीभरत भय के मारे किसी से कुछ पूछ भी नहीं पाते हैं कि अन्तोगत्वा हुआ क्या है? लेकिन अयोध्यावासी दूर भले ही खड़े हैं, पर उनकी दृष्टि किधर है? उनकी दृष्टि भरत की ओर थी। वे बड़ी सूक्ष्मता से देख रहे थे कि ननिहाल से लौटकर भरत सबसे पहले कहाँ जाते हैं। उन लोगों ने देखा कि भरत आए और अपने घोड़े को कैकेयी के महल की ओर मोड़ दिये। बस, इस दृश्य को देखते ही जो अयोध्या के नागरिक यह मानते थे कि इस षड्यन्त्र में भरत का हाथ है, उन्होंने दूसरों को दिखाया कि देखो, अगर षड्यन्त्र न होता, तो मर्यादा के अनुसार भरत को चाहिए था कि बड़ी माँ कौशल्या के महल में जाते और तब बाद में अपनी माँ कैकेयी के भवन में जाते। लेकिन वे कौशल्याजी के भवन में नहीं गए, क्योंकि उनमें साहस ही नहीं है कौशल्याजी के भवन में जाने का। वे अपनी माँ से ही मिलने के लिए जा रहे हैं। बस !

अब दो बातों पर मैं आपका ध्यान आकृष्ट करूँ। क्या? महाराज दशरथ का पतन कैकेयी के महल में जाने से हुआ। आज श्रीभरत भी आए, तो वे भी सबसे पहले कैकेयी के ही महल में गये। पर इन दोनों योगियों के जीवन पर इसका अलग-अलग प्रभाव क्यों पड़ा? बस उसका मूल सूत्र यह है कि वस्तुत: महाराज दशरथ कैकेयी के महल में गये थे अपने शरीर के नाते से और श्रीभरत कैकेयी के महल में गये थे श्रीराम के नाते से। इसलिए नहीं गये थे कि कैकेयी मेरी माँ है। बल्कि यह व्यग्रता है श्रीभरत को कि जहाँ श्रीराम का दर्शन हो सके, सबसे पहले वहीं चलें और उन्हें यह पता था कि श्रीराम अधिक से अधिक समय कैकेयी अम्बा के महल में ही व्यतीत करते हैं। यह कैकेयी अम्बा के वाक्यों की ओर देखें, तो स्पष्ट संकेत मिलता है और आगे श्रीभरत के वाक्यों में भी इसका संकेत मिलता है। इसका अभिप्राय यह है कि जब दशरथ कैकेयी के महल में गये थे, तो कामचन्द्र के चकोर बनकर गये थे और जब श्रीभरत गये थे कैकेयी के महल में तब न तो वे उन्हें अपनी माँ समझ कर गये, न शरीर के नाते गये, अपितु उसका सूत्र यही था –

पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें।
सब मानिअहिं राम के नातें।। २/७३/७

जो हमें सबसे पहले राम से मिलावे, वही पूज्य है और भरतजी को लगा कि कैकेयीजी ही अगर सबसे अधिक राम के प्रिय हैं, तो श्रीराम के नाते सबसे पहले हमें उन्हीं के भवन में जाना चाहिए। इतना ही नहीं, होता यह था कि श्रीराम जब अधिक समय कैकेयीजी के महल में व्यतीत करते थे, तब अन्य माताएँ कौशल्याजी और सुमित्राजी भी, अपने महलों से निकलकर कैकेयीजी के महल में आ जाती थीं। महाराज दशरथ भी अधिकतर कैकेयी के महल में ही रहा करते थे। तो श्रीभरत को यह विश्वास था कि अगर मैं केवल दिखावे के लिए, लोगों के सामने यह प्रदर्शित करने के लिए कि मैं कितना बड़ा मर्यादावादी हूँ और कितना मेरे अन्त:करण में बड़े और छोटे की भावना है, यह दिखाने के लिए अगर मैं कौशल्याजी के महल में जाऊँगा, तो लोक दृष्टि से दिखावा तो होगा, पर श्रीराम का दर्शन नहीं होगा और मैं यदि सीधे माँ कैकेयी के महल में जाता हूँ, तो एक साथ सब का दर्शन हो जायेगा।

इस पवित्र भावना का अभिप्राय क्या है? वह यह है कि महत्त्व क्रिया का नहीं है, क्रिया के पीछे की भावना का है। क्रिया पतन का कारण बन सकती है और नहीं भी बन सकती है। क्रिया के पीछे अगर आसक्ति है, क्रिया के पीछे अगर फलाकांक्षा है, तो पतन की आशंका है और क्रिया के पीछे आसक्ति नहीं है, फलाकांक्षा नहीं है, तो फिर पतन का कोई प्रश्न नहीं है। श्रीभरत कैकेयीजी के महल में जाते हैं। कैकेयी सोने की थाल में दीपक जलाकर भरत का स्वागत करने बड़े उत्साहपूर्वक आगे बढ़ती हैं। पर श्रीभरत की दृष्टि न तो सोने के थाल पर है, न दीपक की ज्योति पर है, भरत की आँखें तो चारो ओर ढूँढ रही हैं कि श्रीराम कहाँ हैं? जब कैकेयी ने आरती उतारी, तो श्रीभरत की भावना वहाँ पर स्पष्ट हो गई कि कौन-सी भावना लेकर भरत आए थे। श्रीभरतजी ने तुरन्त कैकेयीजी से पूछा –

कहु कहँ तात कहाँ सब माता।

कहँ सिय राम लखन प्रिय भ्राता।। २/१५८/८

पिताजी यहाँ दिखाई नहीं दे रहे हैं, माताएँ दिखाई नहीं दे रही हैं और सबसे बड़ी बात, भैया राम और लक्ष्मण दिखाई नहीं दे रहे हैं। आज आप अकेली कैसे हैं? कैकेयी की वृत्ति तो निष्ठुरता की सीमा में पहुँची हुई है। मनुष्य एक बार जब परिवर्तित होता है, जब उसमें स्वार्थ की वृत्ति आती है, तो वह संवेदनाहीन हो जाता है। गोस्वामीजी ने लोभ की तुलना कफ से की। वे कहते हैं –

काम बात कफ लोभ अपारा।

क्रोध पित्त नित छाती जारा।। ७/१२०/३०

तो कफ व्यक्ति के हृदय को जकड़ लेता है। उसी प्रकार से लोभ की वृत्ति व्यक्ति के हृदय को ऐसी जकड़ लेती है कि व्यक्ति के हृदय की सारी संवेदना, सारी कोमलता समाप्त हो जाती है। गोस्वामीजी से पूछा गया कि कैकेयी को देखकर क्या लगता है? तो उन्होंने कहा कि कैकेयी को देखकर लगता है – **बैठि मनहुँ तनु धरि निठुराई। २/४०/४**

निष्ठुरता और कठोरता ही जैसे शरीर धारण करके संसार में आ गई हो। इस प्रकार से कैकेयीजी निष्ठुरता और कठोरता के रूप में दिखाई देती हैं। उनकी निष्ठुरता और कठोरता इतनी सीमा तक बढ़ चुकी थी कि महाराज श्रीदशरथ ने सोचा कि युद्ध क्षेत्र में मुझे घायल होने से बचाने के लिए महारानी कैकेयी ने रथ के पहिए को गिरने से रोकने के लिए अपनी दो अँगुलियों को लगाकर मुझे घायल होने से बचाया था। अगर उनके सामने मैं अपने मृत्यु का भय उपस्थित करूँ, तो शायद कैकेयी का हृदय बदल जायेगा। तब उन्होंने कैकेयीजी से कहा कि आप अगर राज्य भरत को देने के लिये कहती हैं, तो मुझे रंचमात्र आपत्ति नहीं है, लेकिन अगर आपने यह आग्रह किया कि राम को वनवास दिया जाये, तो आपको पता है कि इसका परिणाम क्या होगा? इसका परिणाम होगा कि मेरी मृत्यु अवश्यम्भावी है। महाराज दशरथ के मन में कहीं न कहीं आशा थी कि मेरी मृत्यु की बात सुनते ही कैकेयी भयभीत हो जाएँगी और यही कहेंगी कि नहीं महाराज, आप दीर्घजीवी रहें। मैं भला क्या आपके मृत्यु का कारण बन सकती हूँ? लेकिन गोस्वामीजी ने जो शब्द लिखा कि निष्ठुरता शरीर धारण करके बैठी हुई है, यह कैकेयी के वाक्यों से प्रगट हुआ। कैकेयीजी ने तुरंत महाराज श्रीदशरथ से कहा – महाराज, आपने मृत्यु की बात की तो मृत्यु तो किसी न किसी की होगी। आपकी भी हो सकती है और मेरी भी हो सकती है। आपको मैं बता दूँ कि अगर कल प्रात:काल राम वन नहीं चले गये, तो मेरी मृत्यु अवश्यम्भावी है। अगर पत्नी के सामने यह प्रश्न आवे कि मेरी मृत्यु पहले हो कि पति की मृत्यु पहले हो, तो समर्पण वृत्ति से स्त्रियों के मन में यही भावना रहती है कि पति के सामने ही मेरा शरीर छूट जाये। महाराज दशरथ ने देखा कि अगर दोनों में से एक की मृत्यु अवश्यम्भावी है, तो आप किसकी मृत्यु पहले चाहती हो? तो कैकेयी ने सीधे तो नहीं कहा, पर अर्थ छिपा हुआ है कैकेयी के शब्दों में और वह अर्थ क्या है, इस पर आप विचार कीजिए। कैकेयी ने कहा, महाराज, आपकी मृत्यु और मेरी मृत्यु में अन्तर है। क्या? मैं मरूँगी तो केवल मैं मरूँगी ही नहीं, बोलीं –

होत प्रातु मुनिबेष धरि जौं न रामु बन जाहिं।

मोर मरनु राउर अजस नृप समुझिअ मन माहिं।। २/३३/०

मेरी मृत्यु होगी और आपको कलंक लगेगा। अर्थ यह था कि आपकी मृत्यु होगी, तो आपको यश मिलेगा और मेरी मृत्यु होगी, तो आपको कलंक लगेगा। तो इससे बढ़िया अवसर नहीं मिलेगा कि आप यश की रक्षा करें, शरीर की रक्षा करके क्या करिएगा? तो जब यह वृत्ति आ जाये कि दूसरे को हम बलपूर्वक धर्म के लिए, सत्य के लिए शहीद बनावें, तो वह विचारणीय हो जाता है। कैकेयीजी कितनी निष्ठुर बन चुकी हैं, गोस्वामीजी के इन वाक्यों में – **मोर मरनु राउर अजस** और फिर चेतावनी दे देती हैं – **नृप समुझिअ मन माहिं।** कैकेयीजी कह रही हैं – जरा गहराई से मेरी बात पर विचार कीजिए। अगर आप सत्य के लिए प्राण का परित्याग कर देंगे, तो महापुरुषों में आपके नाम की गणना होगी कि सत्य की रक्षा के लिए महाराज ने प्राण का परित्याग कर दिया और पुत्र के लिए प्राण त्याग देंगे, तो अमर महापुरुषों में आपकी गणना होगी। यदि मैं मरूँगी, तो आपको कितना बड़ा कलंक लगेगा ! लोग कहेंगे कि कैकेयीजी को वचन देने के बाद महाराज दशरथ उससे मुकर गये। इस प्रकार से आपकी अपकीर्ति हो, यह मुझे सह्य नहीं है।

वही निष्ठुरता भरत के सामने दिखाई पड़ी। जब भरत ने पूछा, तो कैकेयी के मुख पर रंचमात्र कोई विषाद का चिह्न नहीं आया। बल्कि गोस्वामीजी ने कहा –

आदिहु ते सब आपनि करनी।

कुटिल कठोर मुदित मन बरनी।। २/१५९/८

(क्रमशः)

युवाशक्ति चुनौतियों का सामना कैसे करे?

स्वामी गुणदानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

एक युवा को व्यवसाय में हानि हुई और उसने इस असफलता के कारण आत्महत्या करने का निर्णय लिया। घरवालों को एक चिठ्ठी में अपने मन की बात लिखकर वह समुद्र तट पर गया। वह छलांग लगानेवाला ही था कि उसे अचानक समुद्र की लहरों के साथ तट पर एक सन्दूक दिखा। उस सन्दूक में ताला नहीं था। उसने सन्दूक खोला। पूरा का पूरा सन्दूक रुपयों से भरा हुआ था। उन रुपयों को देखकर उसका मनोभाव बदल गया और उसने आत्महत्या के अपने निर्णय को त्याग दिया। वह रुपयों से भरे सन्दूक के साथ अपने घर लौटा। परिवारवाले उसे देखकर प्रसन्न हुए। अब वह युवक फिर से अपना व्यवसाय करने लगा। हम देखते हैं कि वह युवा मरना नहीं चाहता था। वह असफलता तथा चुनौती का सामना न कर पाने के कारण आत्महत्या करना चाहता था। वह जीना चाहता था। कोई भी व्यक्ति जीवन में असफल नहीं होना चाहता। सभी आनन्द से जीवन जीना चाहते हैं। वह आनन्द सफल तथा सार्थक जीवन से प्राप्त होता है।

जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए हर व्यक्ति को संघर्ष और चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। युवा इन चुनौतियों का सामना कैसे करे?

चुनौतियों का सामना करने हेतु युवाओं को आवश्यक है कि वे आत्म-आकलन (Self Evalution) और चरित्र का एकीकरण (Integration of character) करना सीखें। युवाओं को आत्मविश्वास के साथ-साथ आत्मनिर्भर बनना होगा। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है, History of the world is the history of few men who had faith in themselves, that faith call out their divinity within. आधुनिक सन्दर्भ में faith (श्रद्धा) शब्द को आत्मविश्वास (Self-confidence) कहा गया है। स्वामीजी के अनुसार पुराना धर्म कहता है, जो ईश्वर पर विश्वास नहीं करता है, वह नास्तिक है, लेकिन नया धर्म कहता है, जो स्वयं पर विश्वास नहीं करता, वह नास्तिक है। आत्मविश्वास सफल जीवन की कसौटी है।

अब युवाओं के मन में प्रश्न उदित होता है कि आत्मविश्वास कब कम होता है या कैसे खो जाता है? इसके निम्नलिखित कारण हैं -

१. गलत आत्म-आकलन से – किसी भी परिस्थिति या कठिनाई का सामना करते हुए यदि कोई अपनी आशा के अनुरूप सफल नहीं होता है तथा वह स्वयं को पूर्ण रूप से असफल स्वीकार करता है, उसके इस गलत आकलन के कारण आत्मविश्वास कम हो जाता है। वह निर्णय नहीं ले पाता। असफल होने पर उसे यह नहीं कहना चाहिए कि I fail, बल्कि यह कहना चाहिए I did well partially.

२. अपनी गलतियों के बारे में बारम्बार सोचने से – मनुष्य गलतियों का पुतला है। गलतियों के माध्यम से मनुष्य अधिक सीखता है। इसलिए बार-बार अपनी असफलता के लिए आत्म-निन्दा नहीं करनी चाहिए। अपनी असफलता के बारे में एक गलत आलोचना और आकलन मनुष्य को दयनीय बनाता है। वह आशा की किरण खो देता है, जिससे नकारात्मक सोच वर्धित होती है और हम सकारात्मक सोच की उपेक्षा कर देते हैं।

३. दूसरों पर निर्भर रहना – दूसरों की राय पर अनावश्यक तथा अत्यधिक निर्भर रहना कमजोर मन की एक हानिकारक प्रवृत्ति है। दूसरों की राय पर अत्यधिक निर्भर रहने से आत्मविश्वास में कमी आती है। अत: हमें अन्तर्मन की शक्ति पर निर्भर रहना चाहिए, न कि दूसरों पर।

आत्मविश्वास को कैसे विकसित करें?

१. वास्तविकता को स्वीकार करें – हमें यह स्वीकार करना होगा कि हम में से कोई भी पूर्ण नहीं है। अत: हम यह अस्वीकार न करें कि हमारी गलतियों तथा असफलताओं के बाद भी हम स्वयं की त्रुटियों का आकलन कर आगे बढ़ सकते हैं। हमें अपने प्रयासों का निर्वहन करना चाहिए, परिणाम की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए। आत्मविश्वास की कमी, अस्थिरता, मन का विचलन होना तथा चंचलता मन का स्वभाव है। मन के इस स्वभाव के कारण आत्मविश्वास कभी कम हो जाता है। परन्तु अभ्यास तथा स्वयं के प्रयासों से हम आत्मविश्वास को पुन: प्राप्त कर सकते हैं।

२. अपने अच्छे गुणों का आकलन करें – हर व्यक्ति में अपनी-अपनी प्रतिभाएँ हैं। हर मनुष्य में अच्छे गुण विद्यमान हैं। हमें अपनी प्रतिभा को पहचानना होगा तथा ऐसे क्षेत्र का चयन करना चाहिए, जिस क्षेत्र में हम अच्छा प्रदर्शन कर सकते हैं और अपनी प्रतिभा का लोहा मनवा सकें। अत: जब हम आत्मविश्वास खो देते हैं, तब हमें उदास होने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि हमें आत्मछवि, स्वत:धारणा द्वारा सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। स्वामीजी ने कहा है जो स्वयं पर विश्वास नहीं करता, वह नास्तिक है। सकारात्मक सोच पुन: आत्मविश्वास बढ़ाने में सहायता करता है।

३. सच्चा मार्गदर्शक मित्र – एक सच्चा और विश्वसनीय मित्र वह होता है, जो हमें हमारी अच्छाइयों के बारे में बताए और साथ में हमारी गलतियों एवं बुराइयों से हमें अवगत कराये। इस प्रकार के सच्चे मित्र के साथ अपने विचारों के आदान-प्रदान से हम स्वयं के मूल्य को समझ पाते हैं तथा असफलता का कारण भी जान पाते हैं।

४. नई चुनौतियों का सामना करना – हमें किसी भी चुनौतिपूर्ण कार्य का सामना करने से भागना नहीं चाहिए। पलायन से हमारे भीतर नकारात्मक विचारों का जाल बनता है। मूर्ख व्यक्ति कहता है कि मैं जब तक तैरना नहीं सीखूँगा, जल का स्पर्श नहीं करूँगा। हमें अडिग होकर चुनौतियों का सामना करने का प्रयास करना चाहिए। असफलता भी एक प्रकार से हमें हमारी त्रुटियों का आकलन करने में सहायता करती है। अत: हमें असफलता से निराश नहीं होना चाहिए। बल्कि निरन्तर प्रयत्न करते रहना चाहिए। क्योंकि बार-बार प्रयास के द्वारा स्वयं का आत्मविश्वास बढ़ता है और किसी भी चुनौती का सामना करने का हम साहस कर सकते हैं। राबर्ट ब्रूस अपना राज्य हार गया था। उसने कई प्रयास किये, परन्तु असफल ही रहा। फिर वह एक गुफा में एकान्तवास करने लगा। जिस गुफा में वह रह रहा था, वहाँ उसने देखा कि एक मकड़ी दीवार पर नीचे से ऊपर चढ़ने में बार-बार असफल हो रही थी। असफल होने के बाद भी वह सतत अपने प्रयासों में लगी रही और अन्त में उसने दीवार चढ़ कर सफलता प्राप्त की। रॉबर्ट ब्रूस ने मकड़ी के प्रयासों से आत्मविश्वास सीखा। उसने फिर से साहस किया और सेना का गठन कर वह निरन्तर लड़ता रहा और अपने राज्य को पुन: जीत लिया। रॉबर्ट ब्रूस ने मकड़ी के उदाहरण से सकारात्मक दृढ़ निश्चय द्वारा अपने जीवन में सफलता प्राप्त की।

५. पूर्वाभ्यास – किसी भी कार्य को करने से पहले हमें उसमें निहितार्थ को परखना चाहिए। हमें स्वयं के विकास एवं सुधार के लिए समग्र एवं समुचित दृष्टिकोण द्वारा अपनी क्षमता का आकलन करना होगा। अपने उत्थान के लिए दूसरों की सहायता लेने से परस्पर नैतिकता को बढ़ावा मिलता है।

६. अच्छा कार्य करने में विश्वास – कभी-कभी जीवन में ऐसे भी क्षण आते हैं, जब हम अपनी अच्छाइयों पर विश्वास नहीं कर पाते और दूसरों की अच्छाइयों को नहीं देखते। इस प्रकार की नकारात्मक सोच हमारे विकास के मार्ग में अवरोधक है। जितना अधिक हम स्वयं तथा दूसरों के प्रति अच्छी सोच रखने का प्रयास करेंगे, उतना ही अधिक हम अच्छाइयों की शक्ति पर विश्वास करना सीख पायेंगे। कुछ लोग आत्मविश्वास को मनोविज्ञान से जोड़ते हैं, ऐसा आकलन करना उचित नहीं है, क्योंकि हम विश्वास नहीं आत्मविश्वास के बारे में विचार कर रहे हैं। मनोवैज्ञानिक कारक मन के अधीन हैं। जब हम किसी कारण से परेशान होते हैं, विक्षिप्त होते हैं, हम कोई भी कार्य नहीं कर पाते हैं, ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि हम स्वयं को केवल मन ही मानते हैं। परन्तु आत्मा हमारे हृदय में पहले से निहित है। हमारा विश्वास इस आत्मा की अभिव्यक्ति पर निर्भर करता है। जितनी अधिक आत्मा की अभिव्यक्ति होगी, उतना ही अधिक हममें आत्मविश्वास अभिव्यक्त होगा।

सकारात्मक दृष्टिकोण से हम जीवन की बड़ी से बड़ी

शेष भाग पृष्ठ २८६ पर

आध्यात्मिक जिज्ञासा (७८)

स्वामी भूतेशानन्द

(५१)

प्रश्न – महाराज ! आपलोगों के समय मठ का सब काम तो संन्यासी-ब्रह्मचारी ही करते थे न?

महाराज – हमलोग पहले से ही सुनते चले आ रहे हैं, ठाकुर का अन्न बैठ-बैठकर नहीं खाना चाहिए। कुछ-न-कुछ काम करना ही चाहिए। कई लोग तो लगता है, कुछ भी काम नहीं करते हैं। यही तो समस्या है। जिससे जितना होगा, करेगा, ऐसा ही जानता हूँ। हमारे केष्टलाल महाराज वृद्धावस्था में सब्जी काटते थे। अभी सब्जी कर्मचारी काटते हैं, तब साधुलोग क्या करते हैं?

– कुछ साधु लोग भी काटते हैं महाराज?

महाराज – ओ, थोड़ा-सा काटते हैं !

– ब्रह्मचारी लोग भी काटते हैं।

महाराज – थोड़ा-सा करने से ही हुआ। जिसकी जितनी क्षमता है, उतना ही करने से ही हुआ। मैं यह नहीं कहता कि उसे प्राण दे देना होगा, कुछ न कुछ करना चाहिए। ये मेरे जैसे बैठ-बैठकर खाना, ठीक नहीं। (हँसी)

प्रश्न – तोतापुरी जी वेदान्तवादी संन्यासी थे। वे तो वही अग्नि, धुनी ये सब जलाते थे। अग्नि की सेवा करते थे। ऐसा कैसे होता है महाराज?

महाराज – वे नागा संन्यासी थे तो ! नागा संन्यासी अग्नि की सेवा करते हैं।

– नागा संन्यासी दशनामी संन्यासी हैं क्या?

महाराज – नागा संन्यासी भी दशनामी के अन्तर्गत आते हैं। वे लोग अग्नि की सेवा करते हैं। मैं तब मन्दिर में पूजा करता था। एक साधु पल-पल में कहता था – अग्नि माता है, अग्नि पिता है। कम उम्र का नागा था। सिर पर जटा थी। मैंने सोचा – कदाचित् यह कोई ब्रह्मज्ञ-पुरुष होगा। क्योंकि श्रीरामकृष्ण-वचनामृत में पढ़ा हूँ, ब्रह्मज्ञ-पुरुष उन्मादी सदृश होते हैं, पागल जैसे दीखते हैं, किन्तु पागल नहीं हैं। मैं उसके पीछे-पीछे जाता था।

– जाकर आपने क्या देखा महाराज?

महाराज – अभी लगता है, वह पागल था।

– महाराज ! नागा सम्प्रदाय कैसे प्रारम्भ हुआ? क्या मधुसूदन सरस्वती ने प्रारम्भ किया था?

महाराज – नहीं, मधुसूदन सरस्वती नहीं। अकबर के समय की बात है।

– हाँ, अकबर के समय की बात है। मधुसूदन सरस्वती ने प्रयास किया था।

महाराज – कुछ धर्मनिष्ठ हिन्दू-ब्राह्मणों ने अकबर से शिकायत की कि उनके मन्दिरों में मौलवी बहुत उपद्रव कर रहे हैं। अकबर ने कहा – देखो, हमलोग मौलवियों को तो कुछ कह नहीं सकते। तुमलोग एक काम करो। ऐसा एक सम्प्रदाय बनाओ। वे लोग तुम्हारी रक्षा करेंगे। तब इसी नागा-सम्प्रदाय का निर्माण हुआ।

– महाराज, नागाओं में सम्भवत: कोई अब्राह्मण संन्यासी नहीं हो सकता।

महाराज – अब्राह्मण केवल दण्डी संन्यासी नहीं हो सकता। यतिश्रेष्ठ, परमहंस, वह तो अब्राह्मण भी हो सकता है।

– महाराज, सुना हूँ, जो परमहंस होंगे, सम्भवत: वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य में से ही होंगे। क्या वे लोग शूद्र को संन्यास देंगे?

महाराज – शूद्र को तो पहले आश्रमी ही नहीं मानते थे। त्रैवर्ण ही आश्रम के अन्तर्गत थे। शूद्र को अस्पृश्य मानते थे। समस्या यह है कि बृहदारण्यक में तो तुमलोगों ने पढ़ा है – 'अरे त्वाशूद्र'। राजा को 'शूद्र' कहकर सम्बोधन किया है। तब ये कैसे हुआ? राजा शूद्र क्यों होगा? वास्तव में वहाँ शूद्र का अर्थ जाति शूद्र नहीं है। ''शुचाग्र वृत्ति इति शूद्र:।'' अर्थात् जो हिंसा कर रहा है, उसे शूद्र से सम्बोधन किया जा रहा है।

– शंकराचार्यजी को 'ब्राह्मण-ब्राह्मण' करके ऐसा बहुत गर्व था।

महाराज – ब्राह्मण घर में जन्म हुआ था, सम्भवत: इसीलिए।

– किन्तु उन्होंने संन्यास लिया, इतना सब प्रचार किया, आत्मज्ञान का उपदेश दिया, उससे भी उनका वह संस्कार नहीं गया?

महाराज – उन्होंने जहाँ आत्मा की बात कही है, वहाँ वर्ण नहीं है, आश्रम नहीं है, कुछ नहीं है। इसलिए उसके साथ विरोध नहीं हो रहा है।

– क्यों? वहीं तो वे विरोध कर रहे हैं। आत्मज्ञान प्राप्ति में विरोध कर रहे हैं।

महाराज – आत्मज्ञान में तो वे विरोध नहीं देख रहे हैं। सबके भीतर वही एक आत्मा है, उसमें तो दोष नहीं है।

– हाँ, इसीलिए बृहदारण्यक में है – 'ब्राह्मणानाम् एव अधिकार।' 'एव' शब्द को जोड़ दिया है।

महाराज – ''त्रैवर्णिकानामेव एवंविध अधिकार।'' त्रैवर्णिक कहा है।

– किन्तु ब्रह्मसूत्र के भाष्य में त्रैवर्णिक तक नहीं गये।

महाराज – केवल ब्राह्मण नहीं, त्रैवर्णिक कहा है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन सबको वेद का अधिकार है।

– अन्त में शंकराचार्यजी ने एक बहुत बड़ा संशय उत्पन्न कर दिया है, जहाँ महाभारत से एक श्लोक का उद्धरण देकर अपशूद्र अधिकरण समाप्त कर दिया। शंकराचार्यजी भाष्य में कह रहे हैं – चारों वर्णों के सभी लोगों को वेद सुनाना। यही कहकर वे रुक गये। तब उनके इस कथन का क्या होगा?

महाराज – वह तो है। पुन: कह रहे हैं – वे लोग प्रत्यक्ष रूप से शूद्रों को वेद का उपेदश नहीं दे सकते हैं। इसलिए पुराणों के द्वारा वेद के तात्पर्य को कहेंगे। वेद ही एकमात्र शास्त्र है, अन्य कुछ नहीं है। अन्य सब स्मृतियाँ हैं। वेद की ऋचाओं का स्मरण करके उपयोगी बनाकर जो बातें कही गयी हैं, इसीलिए वह स्मृति है।

– महाराज ! आपने कहा कि जब शंकराचार्यजी आत्मज्ञान की बात कह रहे हैं, तब वहाँ आत्मा में, आत्मज्ञान में किसी प्रकार कोई भेद नहीं है। किन्तु वे तो आचार्य हैं और वे जिस तत्त्व की स्थापना करना चाहते हैं, यदि उसे वे अपने जीवन में आचरण कर न दिखायें, तो क्या वह स्थापित होगा?

महाराज – क्या उन्होंने जीवन में यज्ञोपवीत धारण किया है?

– नहीं, उन्होंने यज्ञोपवीत नहीं धारण किया है, किन्तु अन्य प्रबन्ध में जब वे शूद्रों के सम्बन्ध में ऐसा प्रसंग लाते हैं, तब वे सीधे कहते हैं कि उन लोगों का वेद में अधिकार नहीं है।

महाराज – वास्तविक बात है – शूद्र अर्थात् अनाचारी। उन्हें वेद सुनाने से क्या लाभ है? उनमें आत्मा है, यह ठीक है। किन्तु आत्मा रहने से क्या होगा, वह तो शूद्रत्व का आवरण ओढ़े हुए है। उपाधि लिये हुए है। इसलिए वहाँ आत्मा रहने से कोई दोष नहीं है।

– हाँ, हमलोग भी तो यही बात कह रहे हैं। किन्तु जब आचार्यजी व्याख्या कर रहे हैं, तब उसके साथ सामंजस्य नहीं दिखता।

महाराज – तो सुनो। आत्मा रहने पर भी आत्मा दुष्ट नहीं होती।

– केवल ब्राह्मणत्व ही क्यों, अन्य किसी भी उपाधि से आत्मा दुष्ट नहीं हो सकती। केवल शूद्र के विषय में ही क्यों?

महाराज – हाँ, आत्मा कभी दुष्ट नहीं हो सकती।

– ब्राह्मणत्व का अहंकार, ब्राह्मणत्व का अभिमान भी तो एक प्रकार की उपाधि ही है।

महाराज – अरे ! ब्राह्मणत्व जैसी उपाधि है, शूद्रत्व भी वैसी ही उपाधि है।

– इसीलिए दोनों को समान कहना होगा। ठीक है कि नहीं महाराज? उपाधि का क्षेत्र केवल शूद्र ही होगा, ब्राह्मण नहीं, यह कैसे हुआ महाराज?

महाराज – दोनों समान नहीं होगा। देख नहीं रहे हो, उपाधि से भेद हो गया?

– उपाधि से भेद तो हुआ, किन्तु दोनों को आवरणमुक्त नहीं किया जा सकता, ऐसा तो नहीं है।

महाराज – यह बात किसी ने नहीं कही।

– नहीं, जब शूद्र का अधिकार नहीं है, तब वह अपने आवरण को कैसे दूर करेगा?

महाराज – नहीं, नहीं, वह तो पुराणों के द्वारा सुनेगा। उसमें तो बाधा नहीं है। लेकिन कठिनाई कहाँ है, जहाँ कहा गया है – कान में सीसा (काँच) ढाल देना। ये सब नियम एक समस्या है।

– स्वामीजी जब भ्रमण कर रहे थे, तब उन्होंने प्रमदादास मित्र से बहुत-सा प्रश्न पूछा था। उनमें ऐसा ही एक प्रश्न उन्होंने पूछा था।

महाराज – स्वामीजी ने कहा है – हजार हों, (जो भी हो) ब्राह्मण हैं तो, इसीलिए ये सब विसंगतियाँ हैं। पुन: ब्राह्मण अर्थात् नवविधि आचार।

– किन्तु वर्तमान युग में हमलोग कैसे इसे ग्रहण करेंगे या कैसे इसकी व्याख्या करेंगे महाराज?

महाराज – वर्तमान युग में वेद है कि नहीं?

– जो लोग विश्वास करके चर्चा करते हैं, उनके पास है, अन्यों के पास नहीं है।

महाराज – नहीं, ऐसी बात नहीं है। सोच-समझकर कहो, वर्तमान युग में वेद है कि नहीं?

– अवश्य है, महाराज।

महाराज – यदि वह है, तो वर्तमान को अलग क्यों कर रहे हो?

– नहीं। इसकी व्याख्या करके कह रहा हूँ कि अभी तो ऐसा नहीं कहा जायेगा।

महाराज – अभी कोई 'अहं ब्रह्मास्मि' न कहकर यदि कहे "मैं ब्रह्म हूँ", तो क्या इसमें कोई भेद हुआ? हुआ क्या?

– नहीं, महाराज।

महाराज – तब? यह तिड़िं-मिड़िं- अं रं संस्कृत नहीं बोलने से, क्या नहीं होगा?

– किन्तु वर्तमान समय में गुरु के मुख से तो वे सब नहीं सुन पा रहे हैं। उन्हें तो वह सुअवसर ही नहीं मिल रहा है।

महाराज – अरे। फिर सुयोग क्या? अपने भीतर के ब्रह्म का स्वर तो सुन पा रहा है?

– हाँ महाराज ! अभी चारों वार्णों के लोग सुन पा रहे हैं। यह स्वामीजी की कृपा से सम्भव हुआ है।

महाराज – बात हो रही है, यदि संस्कृत में नहीं भी सुना, तो उससे क्या हुआ? पहले कहा गया था कि शूद्र का मन्दिर में प्रवेश का अधिकार नहीं है, किन्तु जब अधिकार दिया गया, तब कितने लोग मन्दिर में जा रहे हैं? ये सब अधिकार-अनधिकार लड़ाई करने के लिए है। पुराण में दिखा रहे हैं – सूतजी वक्ता हैं और ऋषिवृन्द श्रोता हैं। सूतजी का आसन ऋषियों से ऊँचा है, यह पुराण में है। सूतजी संकोच कर रहे हैं, कैसे मैं ऋषियों से ऊँचे आसन पर बैठूँगा? तब ऐसा कह रहे हैं – वह आसन तुम्हारे लिए नहीं किया गया है, यह व्यास के लिये है। तुम उसी आसन पर विराजमान हमलोगों को उपदेश दोगे। यहाँ तो पुराणों ने ही ब्राह्मणों का अधिकार, अहंकार आदि चूर्ण कर दिया है। **(क्रमश:)**

कविता

द्वारकानाथ

सदाराम सिन्हा 'स्नेही'

श्रीहरि द्वारकानाथ हैं, दया के सागर ।
मन मेरे सदा ध्यान कर, दुख हरेंगे नटवर नागर ।।
पुराण उपनिषद ग्रंथ गाते, मदन मोहन की महिमा,
नारद शारद शेष थक गये, गाते गौरव महिमा ।
नाम जपन से मिलता, सबको प्रेम का अमृत गागर ।।
जो करते सदैव ध्यान, मन बसता आनन्द के गाँव,
बल वैभव का सुख मिलता, सत्य स्नेह के शीतल छाँव ।
काल निशा दूर करेंगे, गोपेश करुणा के सागर ।।
त्याग तपस्या से मिलता, भक्तों को आदर्श जीवन,
परमधाम का सुख मिलता, पाले संत सुख संजीवन ।
'सदाराम' जीवन धन्य करते, प्रभु हैं प्यार के सागर ।।

कविता

विश्ववन्द्य श्रीरामकृष्ण जय

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा

विश्ववन्द्य श्रीरामकृष्ण जय, घट-घट में हो विराजमान।
प्रेममूर्ति करुणा के सागर, दया करो हे दयानिधान ।।
कल्पवृक्ष तुम भवभयहारी, भक्त जनों के हृदयविहारी।
धर्मस्थापक परमहंस तुम, ज्ञानमूर्ति शुकदेव समान।।
परमशक्ति के चिर आराधक, दुखी जनों के कष्टनिवारक ।
विमल हृदय तुम सब सुखकारक,स्वात्मरूपबोधक भगवान।।
हे पुरुषोत्तम मायाधीश्वर, ज्ञानभक्ति के पुंज महान।
विमल भक्ति का मुझको वर दो, नित्य करूँ मैं तव गुणगान।।

गीतातत्त्व-चिन्तन (३)

ग्यारहवाँ अध्याय

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है ११वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्।।८।।

तु माम् अनेन (किन्तु मुझको तू इन) स्वचक्षुषा द्रष्टुम् एव न शक्यसे (चर्मचक्षुओं से देखने में समर्थ नहीं है) ते दिव्यम् चक्षुः ददामि (मैं तुझे दिव्य नेत्र देता हूँ) मे ऐश्वरम् योगम् पश्य (उससे मेरा योग ऐश्वर्य देख)।

''किन्तु मुझको तू इन चर्मचक्षुओं से देखने में समर्थ नहीं है, मैं तुझे दिव्य नेत्र देता हूँ, उससे मेरा योग ऐश्वर्य देख।''

किन्तु अर्जुन, यह सब कुछ तू अपने इन नेत्रों से नहीं देख सकता। अपने चर्म चक्षुओं से मुझे देखने में तू समर्थ नहीं होगा। इसलिए मैं तुम्हें दिव्य चक्षु प्रदान करता हूँ। उनकी सहायता से तू मेरा योग ऐश्वर्य देख ले। मुझ ईश्वर का योग कैसा है, उसकी विभूति कैसी है, यह सब तू मेरी दी हुई आँखों से देख ले। एक छोटे-से शरीर में भगवान को उनके सम्पूर्ण ऐश्वर्य के साथ देख लेना, वैसा ही है जैसे एक मूर्ति में सम्पूर्ण विश्व को देखने का प्रयास करते हैं। कण में भगवान विराजते हैं, ऐसा नहीं, वह कण भगवान का ही अंश है। किसी बड़ी वस्तु में से काटकर निकाली गई

वस्तु को उसका अंश, उसका टुकड़ा कहते हैं, उस तरह नहीं है। कोई एक फोटो बहुत बड़े आकार का हो और वही फोटो एक बहुत छोटे आकार में भी हो, तो छोटा फोटो बड़े फोटो का अंश तो नहीं कहलाएगा, उसी तरह बड़े फोटो में से एक टुकड़ा काटकर हम कहें कि यह उस फोटो का अंश है, तब भी बात बनती नहीं, क्योंकि छोटे टुकड़े में वह छवि नहीं रहती। बड़े फोटो और छोटे फोटो में केवल आकार का अन्तर रहता है, बाकी दोनों हूबहू एक जैसे होते हैं।

कण का ईश्वर ही विराट के भीतर

इसी अर्थ में भगवान कण-कण में विराजित हैं। हर कण में उनका ऐश्वर्य निहित है। इसीलिए कण में जो परमात्मा को देख लेता है, वह उन्हें जगत् में देखने में समर्थ होता है। इसीलिए भगवान किसी को पहले बाहर नहीं दिखते, भीतर दिखते हैं। जितने साधक हुए हैं, उन सबने पहले भगवान को अन्दर, अपने ही भीतर देखा और बाद में उस भगवान को वे बाहर देखने में समर्थ हुए। पहले भगवान कण में दिखते हैं, अपने भीतर दिखते हैं, फिर वही विराट् रूप में दिखाई देते हैं। दोनों में किसी प्रकार का कोई अन्तर नहीं है। यदि हम हाथ में थोड़े-से गेहूँ के दाने लेकर कहें कि मुझसे तो गेहूँ पहचाना नहीं जाता। बोरा भर गेहूँ देखें, तो पहचानें, तो लोग हँसेंगे। जिन्हें पहचान है, वे तो एक दाना देखकर ही कह देंगे कि यह गेहूँ है।

इसीलिए साधना-पद्धति में बताया गया है कि अगर तुम कण में और अपने भीतर भगवान को देख लो, एक छोटी-सी मूरत में भगवान को देख लो, तो फिर तुम उस विराट् भगवान को देखने के अधिकारी हो जाते हो अर्जुन भगवान का विराट् रूप देखना चाहता था, इसलिए भगवान ने उसे वह दिखाया। मैं देख लूँ, तो शायद डर जाऊँ। मेरे लिए तो इतना ही पर्याप्त है कि भगवान कण में दिखाई दे दें, मूर्ति में दिखाई दे दें और मैं अपना अभ्यास भी उसी प्रकार करता हूँ। हमें यह जान लेना चाहिए कि कण में जो भगवान हैं, वे उस विराट् के अंश नहीं हैं। जैसे छोटा फोटो उसी के बड़े रूप फोटो का टुकड़ा नहीं है। सारा का सारा बड़ा फोटो अपने सभी तत्त्वों सहित नन्हें-से छोटे फोटो में

समा जाता है। इसी प्रकार वही एक भगवान सबमें विराजित हैं। सबके भीतर उसके दर्शन हो सकते हैं।

भगवान अर्जुन को अपना दिव्य रूप दिखा देते हैं और संजय धृतराष्ट्र को इसकी सूचना देते हैं। संजय भी अर्जुन के समान भाग्यशाली था। अर्जुन ने जो देखा, वही रूप उसी तरह संजय भी देखने में समर्थ हुआ। अदृष्टपूर्व ... जब भगवान ने कहा, तो उनका तात्पर्य था कि तुझे और संजय को छोड़कर। क्योंकि संजय को भी व्यासदेव से दिव्यचक्षु मिले थे। व्यासजी ने संजय से कहा था कि उन चक्षुओं के द्वारा वह महल में बैठे-बैठे भी कौरव-पाण्डवों का युद्ध देख सकता है और यदि वह युद्धक्षेत्र में जाना चाहे, तो उन चक्षुओं के कारण उसे कोई देख भी नहीं सकेगा और कोई हथियार भी चोट नहीं पहुँचा सकेगा। वह वापस आकर मजे से युद्ध का आँखों देखा हाल धृतराष्ट्र को सुना सकेगा।

दिव्यदृष्टि तो संजय को भी मिली थी, पर उसकी दिव्यदृष्टि और अर्जुन की दिव्यदृष्टि में अन्तर है। यह अन्तर बड़ा सूक्ष्म है। दोनों ही भगवान के अत्यन्त प्रिय हैं, दोनों ही भगवान के दिव्य रूप को देख सकते हैं, दोनों को ही दिव्यचक्षु मिले हुए हैं। ये दिव्य चक्षु अर्जुन को स्वयं भगवान देते हैं और संजय को भगवान वेदव्यास देते हैं।

श्रवण और मनन के बाद भगवान को देखने की आकुलता मन में आ जाए, तब समझ लेना चाहिए कि श्रवण और मनन ठीक-ठीक हुआ है। भगवान को देखने की इच्छा मन में नहीं जगी, तो यही समझना चाहिए कि हमने मनन नहीं किया था। शायद श्रवण भी अभी तक नहीं किया। अर्जुन ने श्रवण और मनन ठीक-ठीक किए थे। इसके फलस्वरूप उसके मन में भगवान के विराट् रूप को देखने की अभिलाषा जगी थी और उसने भगवान से कहा था – आपका जो अव्यक्त रूप है भगवन् ! उसको मुझे कृपा करके दिखाइए। क्योंकि इस रूप को तो मैं क्षर मानता हूँ।

श्रीकृष्ण का क्षर और अक्षर रूप

अर्जुन के मनन का फल यह हुआ कि वह भगवान कृष्ण को अपने सामने मनुष्य का रूप धारण किए हुए देखता है और यह मानता है कि शरीर तो अविनाशी है। अर्जुन जानता है कि भगवान आयु में अर्जुन से कुछ बड़े हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि भगवान कृष्ण का जन्म हुआ है। वे शरीर धारण करते हैं। जो भी शरीर जन्म लेगा, उस शरीर का नाश भी होगा। इसीलिए अर्जुन भगवान से कहता है कि अपने उस अव्यय रूप को दिखाइए, जिसके सम्बन्ध में आपने अभी बताया। विभूति-दर्शन में भगवान कृष्ण अपने उसी रूप का आख्यान करते हैं। वह जो अव्यय रूप है, जिस रूप का कभी नाश नहीं होता। जिसका नाश नहीं होता, वह सर्वव्यापी होता है। जो भी नाशवान नहीं है, उसे सर्वव्यापी होना ही चाहिए। जो सर्वव्यापी नहीं है, उसका नाश अवश्यम्भावी है। नाश का अर्थ यह हुआ कि जो काल के द्वारा सीमित है, आकाश के द्वारा सीमित है। काल के द्वारा सीमित होने का अर्थ यह है कि किसी एक काल में उसका जन्म हुआ, तो किसी एक काल में उसका नाश भी होगा ही। इसी तरह जो भी देश, आकाश के द्वारा सीमित होता है, उसका नाश होता ही है। देश के द्वारा सीमित होना अर्थात् अमुक जगह पर अमुक वस्तु का उत्पन्न होना। उस वस्तु को उस जगह ने सीमित कर लिया। अर्जुन जानता है कि भगवान कृष्ण का जन्म हुआ था, जो देश-मथुरा नगरी के द्वारा सीमित है, काल में सीमित है, क्योंकि उम्र है ८६ वर्ष। इसीलिए अर्जुन उनके उस रूप को देखना चाहता है, जो अव्यय है, जो रूप सर्वव्यापी है और सर्वव्यापी होने के कारण जो भिन्न-भिन्न विभूतियों के रूप में प्रकट होता है। दसवें अध्याय में अर्जुन भगवान से उनकी विभूतियों का परिचय पा चुका है और अब उनके उसी रूप को देखने का इच्छुक है।

भगवान के दिव्य रूप को देखनेवाले व्यक्ति

भगवान ने तो अपने उस रूप को अदृष्टपूर्व बताया। वह कैसे? अर्जुन से पहले भी वे अपने उस रूप का दर्शन कुछ लोगों को करा चुके हैं। बचपन में माता यशोदा को वह रूप दिखाया, जब उनपर मिट्टी खा लेने का आरोप लगाया था। महाभारत में जहाँ नारायणीय धर्म के प्रसंग में भगवान कृष्ण अपने इस रूप का दर्शन नारद को भी कराते हैं। दुर्योधन जब कृष्ण को पकड़ लेना चाहता था, तब भी भगवान ने अपना वहीं रूप दिखाया था, जिसे देखकर सभी सभासद डर गये थे। दुर्योधन और उसके भाई भी घबरा गए थे, पर कुछ लोग ऐसे थे जिन्होंने उनके उस रूप को नजर भरकर देखा था। पहले थे आचार्य द्रोण, दूसरे भीष्म पितामह, तीसरे विदुरजी और उसी सभा में बैठे कुछ सन्त-महात्माओं ने भी भगवान के दिव्य रूप को देखा। ये लोग भगवान का वह रूप इसलिए देख सके, क्योंकि श्रीकृष्ण के चरणों में उनकी अनन्य प्रीति थी। उनके माँगे बिना ही भगवान ने उनको दिव्य चक्षु दे दिये। उन दिव्य चक्षुओं के

शेष अगले पृष्ठ पर

श्रीरामकृष्ण-गीता (१२)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

(स्वामी पूर्णानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। उन्होंने २९ वर्ष पूर्व में इस पावन श्रीरामकृष्ण-गीता ग्रन्थ का शुभारम्भ किया था। इसे सुनकर रामकृष्ण संघ के पूज्य वरिष्ठ संन्यासियों ने इसकी प्रशंसा की है। विवेक-ज्योति के पाठकों के लिए बंगला भाषा से इसका हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर के स्वामी कृष्णामृतानन्द जी ने की है। – सं.)

रामोऽग्रे मध्यगा सीता तत् पश्चाल्लक्ष्मणो यथा।।
रामोऽत्र परमात्मास्याल्लक्ष्मणो जीवसंज्ञकः।।१०।।
मायावरणरूपा सा जानकी मध्यवर्तिनी।।
यावद्धि जानकी मध्ये रामस्तावन्न दृश्यते।।११।।

अर्थ : जैसे आगे श्रीराम, बीच में माँ सीता और उनके पीछे लक्ष्मणजी हैं। यहाँ पर राम परमात्मा हैं, लक्ष्मण जीवात्मास्वरूप हैं और बीच में हैं माया-आवरणरूपिणी माँ सीता। जब तक माँ सीता बीच में रहती हैं, तब तक लक्ष्मण राम को देख नहीं पाते हैं।।१०-११।।

यदा पार्श्वगता किञ्चित् सीतावरणरूपिणी
जीवरूपस्तदा रामं लक्ष्मणो द्रष्टुमर्हति।।१२।।

अर्थ : जब आवरणरूपिणी माँ सीता एक ओर थोड़ी-सी हट जाती हैं, तो जीवरूप लक्ष्मण प्रभु राम को देख पाते हैं।।१२।।

विद्याविद्येति सा माया भवति द्विविधा पुनः।।
विद्या भवति मोक्षायाविद्या बन्धाय कल्पते।।१३।।

अर्थ : फिर यह माया दो प्रकार की होती है। विद्या माया तथा अविद्या माया। विद्यामाया मोक्ष के लिये होती है तथा अविद्यामाया बन्धन का कारण होती है।।१३।।

वैराग्याख्या विवेकाख्या सा विद्या द्विविधा ततः।।
एनामाश्रित्य जीवोऽयं भगवच्छरणं व्रजेत्।।१४।।

अर्थ : उनमें से विद्यामाया दो प्रकार की होती है – विवेक और वैराग्य। इसी विद्यामाया का आश्रय करके जीव भगवान की शरण में आता है।।१४।। **(क्रमशः)**

पिछले पृष्ठ का शेष भाग

द्वारा उन लोगों ने भगवान के दिव्य रूप को आनन्दपूर्वक देखा। अर्जुन ने भगवान से कहा – आप मुझे यदि इसके योग्य समझते हों, तो कृपा करके अपना दिव्य रूप मुझे दिखाइए, पर द्रोणादि ने ऐसा नहीं कहा था। उनके कहे बिना ही करुणामय भगवान ने उन्हें दिव्यचक्षु देकर अपना रूप दिखाया। भगवान की कृपा जब होती है, तब भगवान के दर्शन होते हैं। मनुष्य अपने पुरुषार्थ के बल पर उनका दर्शन नहीं कर सकता। पर इसका यह अर्थ नहीं होता कि मनुष्य के पुरुषार्थ का कोई महत्त्व नहीं होता। जीव जो पुरुषार्थ करता है, जो साधना करता है, उससे भगवान द्रवित होते हैं और द्रवित होकर अपनी कृपा हम पर बरसाते हैं और अपने उस दिव्य रूप का दर्शन हमें करा देते हैं। जीव की साधना यह है कि उसका प्रभु-चरणों में ऐसा विश्वास हो कि वे सदा उसका मंगल ही करेंगे। उसे अवश्य ही दर्शन देंगे। तुलसीदासजी लिखते हैं –

बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न रामु।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह विश्रामु।।७/९०/क

भगवान के चरणों में विश्वास होने से उनके प्रति भक्ति उत्पन्न होती है। भक्ति से भगवान द्रवित होते हैं और भक्त पर उनकी कृपा होती है। भगवत्कृपा से हमें सत्संग मिलता है। सत्संग मिलने से विवेक होता है। विवेक से हमारे मोह और भ्रम दूर होते हैं। मोह और भ्रम के न रहने से अनुराग उत्पन्न होता है और अनुराग के उत्पन्न होने से भगवान के दर्शन होते हैं। ऐसा यह साधना का क्रम हमारे जीवन में लागू होता है। अर्जुन ने यह क्रम पूरा करके भगवान से उनके विराट् रूप, अव्यय रूप के दर्शन की इच्छा प्रकट की। भगवान ने भी उसे अनुगृहीत करते हुए कहा – मेरे जितने भी रूप हैं, उनको तू देख ले। मेरे ये रूप नाना प्रकार के हैं और दिव्य हैं। नाना वर्णों के और नाना आकृतियों के ये रूप हैं। ऐसे ये रूप संख्या में सैकड़ों, हजारों हैं, अगणित हैं। तू इन्हें देख। **(क्रमशः)**

साधुओं के पावन प्रसंग (४२)

विभिन्न संन्यासियों की स्मृतियाँ

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

श्रीरामकृष्ण कहते थे – जब तक जीऊँ, तब तक सीखूँ। स्वामीजी कहते थे – सीखना मेरा धर्म है। जो कहता है कि मेरे लिए सीखने के लिए कुछ नहीं है, वह मृत व्यक्ति है। स्वामीजी अनवरत सीखते थे, इसीलिए उनके व्याख्यान में नवीनता रहती थी तथा फ्रेश अनुभव होता था। अवधूत के मात्र चौबीस गुरु थे, परन्तु मैंने उससे भी अधिक वृद्ध तथा नवीन संन्यासियों से संन्यास-जीवन के सम्बन्ध में शिक्षा ग्रहण किया है तथा अभी भी सीख रहा हूँ। विद्यार्थी जैसी मेरी मनोवृत्ति ने मुझे युवावस्था का आस्वादन करा दिया है।

स्वामी विशुद्धानन्द जी महाराज

१९८२ ई. में वाराणसी में स्वामी परानन्द महाराज ने मुझसे कहा, ''देखो, मैं सेवाश्रम से प्रतिदिन बाबा विश्वनाथ का दर्शन करने जाता हूँ। प्रत्येक दिन शिवमहिम्न स्तोत्र से एक श्लोक कागज पर लिखकर पाठ करते हुए रास्ते से जाता हूँ। क्रमशः श्लोक कण्ठस्थ हो जाता है और उसके अर्थ की धारणा होती है। विश्वनाथ दर्शन जाने हेतु यही हुई मेरी तैयारी। इस प्रकार सभी ४१ श्लोक मुझे स्मरण हो गये हैं।''

इससे यह सीखा कि संन्यासीगण कैसे समय का सदुपयोग करते हैं।

एक अन्य संन्यासी को देखा कि वे दिन-रात शास्त्र लेकर व्यस्त हैं। ४९ वर्ष पूजा करके, अभी अवकाश प्राप्त होकर काशी अद्वैत आश्रम में निवास कर रहे हैं। प्रतिदिन ढाई मील पैदल चलकर यह संन्यासी कॉलेज में न्याय और मीमांसा पढ़ने जाते हैं। उन्होंने मुझे मधुसुदन सरस्वती के अद्वैतसिद्धि के मंगलाचरण और ब्रह्मसूत्र के 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' पर एक घण्टा तक बताया। अद्वैत आश्रम (कोलकाता) में रहते समय मैं इन महाराज के लिए पुस्तकें खरीदता था।

मैंने उनसे पूछा, ''आपका समय कैसे व्यतीत होता है?'' उन्होंने कहा, ''आहार, जप-ध्यान, शास्त्र-अध्ययन और विचार लेकर समय व्यतीत करता हूँ।''

और एक संन्यासी स्वामी विशुद्धानन्द जी ने यह बात मुझसे कही थी, ''देखो, जो सब साधु आश्रम का कोई कार्य नहीं करते, केवल बैठे-बैठे ठाकुर का अन्न खाते हैं, वे सब कामपीड़ित होते हैं।''

स्वामी मित्रानन्द

स्वामी मित्रानन्द बेलूड़ मठ मिशन ऑफिस के विधि-विभाग में कार्य करते थे। कार्य हेतु वे कभी-कभी कोलकाता आते थे तथा दोपहर में अद्वैत आश्रम में भोजन करते थे। अद्वैत आश्रम उस समय ४, वेलिंग्टन लेन में था। १९६० ई. में उन्होंने लियो टॉलस्टाय की एक कहानी द्वारा मुझे एक बहुत सुन्दर उपदेश दिया था।

रूस में एक कृषक के दो बैल थे, जिसके द्वारा वह खेती करता था। उसमें एक बैल बड़ा दुष्ट और शरारती था। हल का जुआठ उसके कँधा पर रखने पर वह सो जाता था। अन्त में परेशान होकर कृषक ने उस बैल को कसाई के यहाँ बेच दिया। कसाई ने उसको मारकर उसका माँस बेच दिया। दूसरा बैल बूढ़ा होने तक हल खींचकर अपने मालिक को खेती करने में सहायता करता रहा। अन्त में जब बैल हल खींचने में असमर्थ हो गया, तब कृषक ने विचार किया कि इस बैल ने पूरा जीवन मेरा कार्य किया है, इसको कसाई के पास नहीं बेचूँगा। वह जितने दिन तक जीवित रहेगा, उतने दिन तक मेरे गोशाला में ही जीवित रहे। इसको मैं खाने को दूँगा।

देखो, यह कृषक कितना कृतज्ञ है। उस बूढ़े बैल की अन्तिम दिनों तक देखभाल की और उसकी सेवा की। उसी प्रकार श्रीरामकृष्ण अकृतज्ञ नहीं हैं। हम लोग यदि इस शरीर और मन से ठाकुर का कार्य करेंगे, तो निश्चय ही वे हमारी देखरेख करेंगे। वृद्धावस्था में कौन देखेगा, क्या होगा, इसको लेकर कोई चिन्ता मत करो। महाराज की यह कहानी मेरे मन में सदा के लिए अंकित हो गई है। इसीलिए कहा जाता है – साधु को भी साधुसंग की आवश्यकता होती है।

स्वामी सुखानन्द से श्रुत

०६/११/१९८२, बेलूड़ मठ, प्रातः ९.३० बजे

नरेन महाराज (स्वामी सुखानन्द) ठाकुर, श्रीमाँ और ठाकुर के शिष्यों के प्रसंग में अनेक बातें बताया करते थे।

श्रीरामकृष्ण प्रशिक्षित लोगों को लाकर कई सेनापति को बनाकर चले गये हैं। उनके शिष्यगण कोई साधारण व्यक्ति नहीं थे। ठाकुर ने अपने कार्य हेतु विभिन्न देव-देवी, पूर्ववर्ती अवतारों के पार्षदों को लेकर अपनी शिष्य-मण्डली गठित की थी। स्वामीजी सप्तऋषि-मण्डल के एक ऋषि थे, नररूपी नारायण और शिव के एक अंश थे। महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द) कृष्णसखा व्रज के राखाल थे।

प्रेमानन्दजी ने राधा के अंश से, निरंजनानन्दजी ने राम के अंश से और पूर्णचन्द्र ने विष्णु के अंश से जन्म ग्रहण किया था। योगानन्दजी पूर्वजन्म में अर्जुन, विज्ञानानन्दजी जाम्बवंत, लाटू महाराज हनुमान थे। शिवानन्दजी का शिव के अंश से जन्म हुआ था, इसीलिए उन्होंने एक समय कहा था, ''ऐसा लगता है कि पूर्वजन्म में मैं बौद्ध संन्यासी था।'' रामकृष्णानन्दजी और सारदानन्दजी ईसा मसीह के पार्षद थे। श्रीम (महेन्द्रनाथ गुप्त) और बलराम बोस चैतन्यदेव के पार्षद तथा गिरीश घोष भैरव के अवतार थे। अखण्डानन्दजी कहते थे, ''मैं माँ यशोदा हूँ।''

भक्त-महिलाओं में गोपाल की माँ कृष्ण अवतार की व्रज की फलवाली थीं, योगीन माँ कृपासिद्धा गोपी तथा जया; गोलाप-माँ विजया; निस्तारिणी देवी – छिन्नमस्तिका के अंश से और रासमणि अष्टसखियों में से एक सखी थीं। लक्ष्मी दीदी शीतला की अवतार थीं।

इस युग के अवतार ठाकुर लीला करने हेतु इन सभी चिह्नित व्यक्तियों को लेकर आये थे। ये सब हमारे जैसे कोई साधारण मनुष्य नहीं थे।

देखो, ठाकुर का अनन्तभाव शिष्यों के भीतर विविध प्रकार से आकार पाया है। स्वामीजी अति शक्तिमान पुरुष थे। उन्होंने ठाकुर की अनन्तभावराशि को सम्पूर्ण पृथ्वी पर बिखेर दिया, जैसे कृषक बीज को छींटता है। उन्होंने कहा था – यह भावधारा १५०० वर्षों तक चलेगी।

राजा महाराज भाव-जगत के उत्स थे। एक दिन उन्होंने ठाकुर से पूछा था, ''कोई सात्त्विक, कोई तामसिक – आप किस प्रकार समझते हैं?'' ठाकुर ने कहा, ''आईना में चेहरा देखने की तरह मैं दूसरों के मन के भीतर का सबकुछ देख पाता हूँ।'' ''मुझे सीखा दीजिए।'' ''माँ की इच्छा।'' तदुपरान्त दूसरों के अन्तःकरण को जानने की शक्ति महाराज के भीतर आयी। वे देखने लगे कि दूसरों के मन के भीतर तो मैल भरा हुआ है। तदनन्तर उन्होंने समझा – मैं तो केवल मनुष्य के भीतर के मैल को देखता हूँ। इसके परिणामस्वरूप वे सब संस्कार मेरे भीतर आ जायेंगे। उन्होंने वह शक्ति ठाकुर को वापस कर दी।

श्रीमाँ ठाकुर को समाधि से नीचे उतारकर तेल मालिश करके स्नान कराकर भोजन करा देती थीं। जिस दिन कोलकाता जाना नहीं होता या भक्तगण दक्षिणेश्वर में नहीं आते थे, उस दिन ठाकुर अधिकांश समय समाधि में ही रहते थे।

स्वामी प्रेमानन्द जी ने कहा था, ''स्वामीजी ठाकुर के साथ बहुत तर्क करते थे। इस पर ठाकुर ने स्वामीजी से

कहा, 'देखो, तुम जौहरी होकर इस तरह की बातें करते हो? एक कहानी सुनो। एक धनी व्यक्ति हीरा बेचना चाहता है। एक जौहरी हीरा को देखकर समझ गया कि यह बहुत मूल्यवान है। उसने मालिक को २ लाख रुपया देना चाहा। इसी समय एक और जौहरी वहाँ पर आ गया। उसको देखकर पहलेवाले जौहरी ने हीरा को अपने जूता के अन्दर छुपा कर रख लिया। तत्पश्चात् दूसरे जौहरी के चले जाने के उपरान्त पहलेवाले जौहरी ने जूता से हीरा को निकालकर देखा कि हीरा फटकर चूरमा हो गया है। क्या हुआ? हीरा ने कहा – मैं अभिमान से फट गया। अर्थात् मैं मनुष्य के मस्तक पर रहता हूँ और तुमने मुझे जूता के भीतर रखा?' इसीलिए ठाकुर ने कहा, 'तुम्हारे जैसा अधिकारी यदि मुझे नहीं समझता है, तो मैं हीरा के जैसा फट जाऊँगा।' ''

स्वामी शुद्धानन्द की स्मृतियाँ

(स्वामी शुद्धानन्द स्वामीजी के शिष्य और रामकृष्ण मठ-मिशन के पंचम संघाध्यक्ष थे। स्वामी अनिकेतानन्द (दिनेश महाराज) स्वामी शुद्धानन्द जी के सेवक थे। उन्होंने २९/०९/१९८२ ई. को बेलूड़ मठ में स्वामी शुद्धानन्द के विषय में बताया था। मैंने उन्हें उस स्मृति को लिख देने के लिए कहा तथा उन्होंने इस छोटे-छोटे भागों में स्मृति को लिख दिया।)

स्वामी शुद्धानन्द जी महाराज की सत्य के प्रति अनन्य निष्ठा थी। संघाध्यक्ष होने के दूसरे दिन समाचार-पत्र में उनके उम्र और शिक्षा के सम्बन्ध में सत्य से अधिक लिखा हुआ देखकर, उन्होंने निर्मल महाराज (महासचिव) को बुलाकर कहा, ''समाचार-पत्र में भूल प्रकाशित हुआ है। तुम समाचार-पत्र के सम्पादक को लिखो कि मेरी उम्र तथा साल और महीना ऐसा है तथा मेरी शिक्षा आई.ए. पास सेकेण्ड डिविजन तक है।'' निर्मल महाराज ने आपत्ति प्रकट करते हुए कहा, ''हमलोग संन्यासियों के जीवित अवस्था में उनकी शैक्षिक उपाधि के सम्बन्ध में कुछ प्रकाशित नहीं करते।''

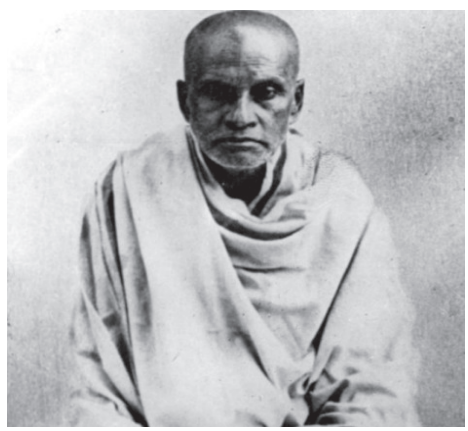

स्वामी शुद्धानन्द जी महाराज

श्रीरामकृष्ण-वचनामृत के प्रति उनके मन में गहरी श्रद्धा थी। प्रतिदिन प्रातः ७ बजे से ठाकुर के भोग का घण्टा लगने तक (११ बजे तक) अध्ययन होता था। अपराह्न ४ बजे से ठाकुर के सन्ध्या आरती का घण्टा लगने तक पाठ होता रहता था। वे कहते थे, ''अभी भी वचनामृत के भीतर नवीन-नवीन भावों के प्रकाश को देखता हूँ। मन के भाव के विकास के साथ-साथ वचनामृत के भाव पर भी नवीन प्रकाश पड़ता है।''

एक दिन श्रीवासानन्द ने कहा था, ''महाराज, मैं प्रतिदिन कुछ स्तोत्र-पाठ करके आपको सुनाना चाहता हूँ।'' इसके उत्तर में शुद्धानन्दजी ने कहा, ''मन्दिर में जाकर ठाकुर के सामने स्तोत्र-पाठ करो।'' श्रीवासानन्द ने कहा, ''मन्दिर के ठाकुर मेरा स्तोत्र-पाठ सुनकर ठीक-ठीक हुआ कि नहीं कुछ भी नहीं कहते। मेरी इच्छा है कि मैं आपको कुछ सुनाऊँगा और आप संशोधन कर देंगे।'' तदुपरान्त एक स्तव के 'पंचानन' शब्द के अर्थ को लेकर प्रश्न उठा। श्रीवासानन्द ने कहा, ''पंचानन शब्द का अर्थ सिंह है।'' शुद्धानन्दजी ने आपत्ति की। तदनन्तर कई शब्दकोश तथा विश्वकोश में देखा गया कि उसका एक अर्थ सिंह है। तब महाराज ने कहा, ''मेरी धारणा थी कि मैं संस्कृत समझता हूँ, किन्तु अभी देख रहा हूँ कि मैं अभी भी कुछ नहीं समझा। सर्व-साधारण जिन स्तोत्रों का पाठ करते हैं उन सबको अन्वय-अर्थसहित बंगला में अनुवाद करके पुस्तक प्रकाशित करने पर बहुत उपकार होगा।'' फिर निर्मल महाराज के निर्देश पर स्वामी गम्भीरानन्द जी ने 'स्तवकुसुमांजलि' पुस्तक लिखी।

स्वामी शुद्धानन्द जी सेवकों के प्रत्येक कार्य और उनके वार्तालापों पर ध्यान रखते थे। सेवक सुधीर (स्वामी महाविद्यानन्द) ने एक दिन बेंच को टूल कहा। यह सत्य है कि नहीं यह जानने के लिए महाराज ने मुझसे भी पूछा। मैंने भी कहा टूल। पूर्वबंग (बांगलादेश) में छोटा टूल, गोल टूल, लम्बा टूल कहते है। बेंच हुआ लम्बा टूल। तब वे सबको कहने लगे, ''मेरे दो सेवक – दोनों ही बांगाल (बंगलादेशी) हैं। मैं उनकी बातें समझ नहीं पाता।'' सन्ध्योपरान्त निर्मल महाराज के उनका दर्शन करने आने

पर उन्होंने कहा, ''तुमने मुझको कैसा सेवक दिया है? दोनों बांगाल (बांग्लादेशी)। वे मेरी बातें नहीं समझते।'' निर्मल महाराज ने कहा, ''एक बांगाल की बातें सुनकर आप घबड़ा गये? आप समस्त मठ-मिशन के संघाध्यक्ष हैं। आपके पास कितने भाषाओं के जानने वाले अपनी-अपनी भाषा में वार्तालाप करेंगे। सभी आपकी ही भाषा बोलेंगे, यह कैसे सम्भव होगा?'' तब महाराज शान्त हो गये।

महापुरुष महाराज से दीक्षित एक भक्त-महिला ने आकर शुद्धानन्दजी से पूछा, ''महाराज, किसी सिद्ध-महापुरुष से दीक्षा लेने पर, क्या उसको स्वयं कुछ साधना करनी होगी या सिद्ध-महापुरुष की कृपा से ही उसको सिद्धि प्राप्त होगी?'' महाराज ने उस महिला को भोजनोपरान्त आने के लिए कहा। प्रभु महाराज और परेश महाराज बगल के कमरे में थे। उन्होंने मुझे प्रभु महाराज को बुलाने के लिए कहा। उनके आने पर महाराज ने कहा, ''देखो प्रभु, तुमलोगों ने मुझे संघाध्यक्ष बनाया है। अभी लोग आकर इस प्रकार के प्रश्न करते है। मैं अब क्या उत्तर दूँगा?'' इस पर प्रभु महाराज ने कहा, ''महापुरुषों की पुस्तक में इस प्रकार की बातें हैं कि जिसे विषधर साँप काटता है, वह चाहे पृथ्वी के नीचे चला जाये, परन्तु उसे मरना ही होगा।'' महाराज ने कहा, ''मैं जो नहीं जानता, उसे नहीं कहूँगा। तुमलोग उस भक्त से कहो।''

सेवकों के कार्य या लिखाई-पढ़ाई में भूल होने पर वे कहते थे, ''तुमलोगों से मैं कमरे की सफाई, वस्त्रों की धुलाई, बाथरूम साफ कराने जैसा कार्य कराता हूँ। प्रत्येक कार्य यदि तुमलोग अच्छी तरह से नहीं करते हो, तो मैं मरने के बाद भी तुमलोगों के हाथ से निस्तार नहीं पाऊँगा। लोग कहेंगे कि ये लोग किसी मेहतर के साथ में थे।''

एक दिन महाराज के पास वचनामृत पढ़ रहा था। ठाकुर कह रहे हैं, ''विशुद्ध (निखाद) करो माँ।'' महाराज ने पूछा, ''विशुद्ध का मतलब?'' मैं चुप रह गया। उन्होंने पुन: पूछा, ''खाद मतलब क्या?'' मैंने कहा, ''(गर्त) बिल।'' वे पूरे दिन चुपचाप रहे। रात्रि में निर्मल महाराज के आने पर शिकायत करते हुए कहा, ''नहीं समझने पर भी ये लोग पूछते नहीं। वचनामृत पढ़कर उसका अर्थ नहीं समझता और साधु होने के लिए आया है ! क्या करूँ?''

निर्मल महाराज – तो महाराज, सभी बातें जानना आवश्यक नहीं है।

स्वामी शुद्धानन्द – यह क्या? अन्त में इनलोगों के कारण क्या मुझे बुरा-भला सुनना होगा? लोग कहेंगे – ये लोग किसी मूर्ख मेहतर के पास में थे। मरने के बाद भी मुझे इनलोगों के कारण बुरा-भला सुनना होगा।''

निर्मल महाराज शुद्धानन्दजी के पास प्रतिदिन आनेवाले दर्शनार्थियों में अन्तिम आगन्तुक थे। वे प्रतिदिन आकर मठ-मिशन की सभी बातें उनको बताया करते थे।

स्वामी शुद्धानन्द जी के पास दिनरात वचनामृत का पाठ चलता रहता था। किसी के द्वारा उपदेश माँगने पर कहते, वचनामृत पढ़ो। ठाकुर ने सभी प्रश्नों का उत्तर दिया है। उनके उपदेशों से यदि कार्य नहीं होगा, तो मेरे उपदेश से भी कार्य नहीं होगा। जिसके पास जितना समय रहता, वह उतना वचनामृत का पाठ सुनता तथा बाद में चला जाता।

स्वामी निखिलानन्द ने अमेरिका से आकर एक दिन स्वामी शुद्धानन्द जी से कहा, ''महाराज, अमेरिका में लोग स्वामीजी के प्रति बहुत ही श्रद्धा करते है ! उनकी बातों से मुग्ध होते हैं।''

स्वामी शुद्धानन्द – क्या कहते हो? जानते हो तो, स्वामीजी को विद्यासागर के विद्यालय से निकाल दिया गया था।

निखिलानन्द – स्वामीजी का कार्य तो गायें चराना (विद्यालय में शिक्षक का कार्य करना) नहीं था, इसीलिए विद्यालय से निकाल दिये गये।

महाराज सुनकर चुप रह गये।

किसी दर्शनार्थी के आने पर सर्वप्रथम उसका नाम, पता, किनका शिष्य है अथवा मठ के किसी संन्यासी के साथ परिचय है कि नहीं, यह जानकारी लेना होता था। इन में से महाराज जिनको बुलाने के लिए कहते, उनको ही पहले बुलाना पड़ता था। उस व्यक्ति के प्रणाम करते समय उनको बताना होता था कि अमुक व्यक्ति प्रणाम कर रहे हैं। क्योंकि उन दिनों वे स्पष्ट नहीं देख पाते थे।

एक दिन एक व्यक्ति अपनी स्त्री, पुत्र-पुत्री के साथ महाराज को प्रणाम करने आये, तब सेवक महाविद्यानन्द ने कहा – यह अमूक महाराज के शिष्य हैं। परन्तु उनके गुरु अन्य महाराज थे। स्वामी शुद्धानन्द जी ने उन भक्तों के सामने ही सेवक को कठोर शब्दों में भर्त्सना करते हुए कहा, ''तुमने इनका गुरु बदल दिया।'' सभी आश्चर्यचकित रह

गये। वे सेवकों की गलती सहन नहीं कर पाते थे। सोचता था – ये लोग यदि जूता से भी मारेंगे, फिर भी इनका संग नहीं छोड़ूँगा। ये लोग वास्तव में कल्याण-कामना करनेवाले हैं। ये लोग हमारे कल्याण हेतु डाँटते हैं।

श्यामाप्रसाद मुखर्जी उस समय मन्त्री थे। अमेरिका जाने के पूर्व वे शुद्धानन्दजी महाराज का दर्शन करने आये। महाराज ने उनको अमेरिका से वापस आने पर पुन: मिलने के लिए कहा। श्यामाप्रसाद मुखर्जी वापस आने पर बेलूड़ मठ में महाराज का दर्शन करने आये। महाराज ने पूछा, ''क्या देखा?'' श्यामाप्रसाद ने कहा, ''मैं एक दिन शिकागो के एक पार्क में घूम रहा था, वहाँ पर एक वृद्ध अमेरिकी के साथ साक्षात्कार हुआ। मैं कोलकाता से आया हूँ, यह सुनकर उन्होंने कहा, 'स्वामी विवेकानन्द इसी पार्क में घूमते थे।' ''

मृत्यु के पूर्व प्राय: तीन दिन और तीन रात्रि वे अचेतन अवस्था में थे। मृत्यु के पूर्व रात्रि में नेत्र खोलकर, 'जय माँ, जय ठाकुर, जय स्वामीजी' कहकर तीन-तीन बार प्रणाम किया। तदुपरान्त नेत्र बन्द करके और कुछ वार्तालाप नहीं किया। उन्होंने अगले दिन प्रात: ८ या ९ बजे अन्तिम साँस ली। मृत्यु के पश्चात् उनके चेहरे पर अद्‌भुत शोभा थी। **(क्रमश:)**

पृष्ठ २७५ का शेष भाग

बाधाओं तथा विपत्तियों को परास्त कर सकते हैं। भारतीय सेना के सेवानिवृत्त वरिष्ठ सैन्य अधिकारी लेफ्टिनेंट जनरल विजय ओबरॉय की युद्ध के दौरान एक टाँग क्षतिग्रस्त हो गई थी, लेकिन उन्होंने हार न मानी और अपने सकारात्मक दृष्टिकोण से लगातार ४० वर्षों तक सेवा दी। वे कहते हैं कि अपंगता मन की होती है, कभी भी अंगों की नहीं। स्वयं को दिव्यांग बनाने से अच्छा है कि हमें जो अवसर मिल रहे हों, उनकी ओर मन को केन्द्रित करें, सोच-सोचकर अपने आप को अपंग न बनायें। युवाशक्ति को इन चार बिन्दुओं को ध्यान में रखना चाहिए – १. चींटी के समान हार मत मानो और सतत प्रयत्न करते रहो, जब तक लक्ष्य प्राप्त न हो। २. सकारात्मक बनो। ३. आगे बढ़ते रहो। ४. जिस क्षेत्र में आप अच्छा कर सकते हैं, अपनी क्षमतानुसार उस कार्य को पूरा करने का साहस करें।

युवाओं को सफलता की ओर अग्रसर होने के लिए सकारात्मक मानसिक दृष्टिकोण, चुनौतियों का सामना करने का साहस, आत्मविश्वास और सतत प्रयासों से जीवन की सभी बाधाओं को परास्त करने के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए। ○○○

पृष्ठ २६० का शेष भाग

आत्मना स्वामिना भोक्त्रा स: एवम् उदानवृत्ति-एव युक्त: प्राण: तं भोक्तारं पुण्य-पाप-कर्मवशात् यथा-संकल्पितं यथा-अभिप्रेतं लोकं नयति प्रापयति।।१०।।

वह प्राण – तेज अर्थात् उदान वृत्ति से युक्त होकर, अपनी आत्मा अर्थात् भोक्ता रूपी मालिक को साथ लेकर, उस भोक्ता (जीव) को पुण्य-पापवाले कर्मों के बल से, उसके संकल्प के अनुसार (अभीष्ट) लोक की प्राप्ति करा देता है।। ३/१०।। **(क्रमश:)**

पृष्ठ २७० का शेष भाग

ध्यान में रखनी होगी। यदि इस क्षणभंगुर जीवन के द्वारा अनन्त काल के कर्म संस्कारों को दूर करना है, तो यही करना है, जिससे जीवन का क्षणमात्र भी और रंचमात्र शक्ति भी इस जगत के कार्यों में नष्ट न हो।

इस बात को समझना बड़ा कठिन है और कार्य में परिणत करना तो हम जैसे लोगों के लिए असम्भव ही लगता है। किन्तु इसे करना ही होगा। इसके अतिरिक्त सुख-शान्ति प्राप्त करने का अन्य कोई उपाय नहीं है। कुछ न कर सकने पर भी हमेशा इस श्लोक को दुहराने से भी हम अपने कार्य में बहुत अग्रसर होंगे। जिस दिन हम इस श्लोक का अर्थ चिन्तन करते-करते समझ जाएँगे, उस दिन हमारा जीवन सार्थक हो जाएगा। **(क्रमश:)**

स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज ब्रह्मलीन हुये

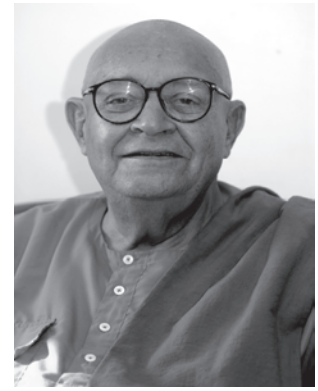

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सचिव स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज २७ फरवरी, २०२२ को ८८ वर्ष की अवस्था में ब्रह्मलीन हो गये। उनका जन्म २ नवम्बर, १९३३ को छत्तीसगढ़ के जगदलपुर में हुआ था। उनकी माताजी का नाम श्रीमती मनोरमा देवी और पिताजी का नाम श्री सूर्यकान्त झा था। महाराज के बचपन का जीवन बहुत संघर्षमय था। महाराज के पिता श्री सूर्यकान्त झा जी बस्तर स्टेट के दीवान थे। स्वामीजी ने प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा जगदलपुर से प्राप्त की। उन्होंने रायपुर के छत्तीसगढ़ कॉलेज से दर्शनशास्त्र में एम.ए. किया और दुर्गा कॉलेज से एल.एल.बी. की परीक्षा उत्तीर्ण की।

वे १९६० में रायपुर में आशुतोष मुखर्जी और स्वामी आत्मानन्दजी के सम्पर्क में आये। इसके बाद उनका जीवन पूर्णत: रूपान्तरित हो गया। उनके जीवन की दिशा बदल गयी। वे श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित हुए और विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में सम्मिलित हो गये। १९६१ में रामकृष्ण मिशन के तत्कालीन उपाध्यक्ष स्वामी यतीश्वरानन्द जी महाराज ने उन्हें रामकृष्ण मठ, नागपुर में मन्त्र-दीक्षा प्रदान की। १९८० में रामकृष्ण मिशन के संघाध्यक्ष स्वामी वीरेश्वरानन्द जी महाराज ने उन्हें संन्यास दीक्षा दी।

स्वामी सत्यरूपानन्द जी कर्मठ संन्यासी थे। वे १६ वर्षों तक बेलूड़ मठ के विधि-विभाग और सारदापीठ के समाज-शिक्षा विभाग के प्रभारी रहे। वे बेलूड़ मठ के ब्रह्मचारी प्रशिक्षण केन्द्र के अल्पकालीन आचार्य भी थे। उसके बाद वे १९८८-८९ में रामकृष्ण मठ, प्रयागराज के अध्यक्ष नियुक्त हुए। वहाँ उन्होंने बहुत से युवकों को प्रेरित किया। उन्होंने १९९० में रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सचिव के पद को अलंकृत किया और अपने जीवन के अन्तिम काल २७ फरवरी, २०२२ तक सुदीर्घ ३१ वर्ष तक इस पद पर विराजमान रहे। स्वामीजी मध्यप्रदेश-छत्तीसगढ़ श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भाव-प्रचार परिषद के कई वर्षों तक अध्यक्ष भी रहे। महाराज छत्तीसगढ़ सरकार द्वारा स्थापित नवरत्नों में से एक थे।

स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज हिन्दी के उत्कृष्ट प्रखर और प्रभावशाली वक्ता थे। सम्पूर्ण भारत में उन्होंने आजीवन रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा का प्रचार-प्रसार किया। उनके प्रवचनों और प्रबन्धों की चार पुस्तकें – १. आनन्दमय जीवन के शत्रु २. जीवन विकास के सोपान ३. सुखी और सफल जीवन और ४. महाभारत मुक्ता, रामकृष्ण मठ, नागपुर से प्रकाशित हुई हैं, जो अत्यन्त लोकप्रिय हैं।

महाराज की प्रतिभा विलक्षण थी। वे कई भाषाओं के ज्ञाता थे, जैसे – हिन्दी, अँगेजी, बंगाली, छत्तीसगढ़ी, उड़िया, बुंदेलखंडी। वे एक कुशल मार्ग-दर्शक और आध्यात्मिक परामर्शक थे। उनकी प्रेरणा से कितने युवक-युवतियों ने श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा को अपना जीवन समर्पित किया। उनके आध्यात्मिक प्रवचनों से लाखों लोग श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की ओर आकर्षित हुए तो, उनके सान्निध्य और उनके विचारों से हजारों विशृंखलित परिवारों में शान्ति और सद्‌भाव का वातावरण बना। महाराज ने समय-समय पर राज्य सरकार को गरीबों और आदिवासियों के लिये कार्य करने का परामर्श दिया और राज्य सरकार ने उसे पूरा भी किया। स्वामीजी के पास सभी दलों के नेता, उच्च पदाधिकारी आदि आकर उनसे परामर्श लेते रहते थे। सर्वोपरि वे ब्रह्मचारी-संन्यासी, गृहस्थ, बच्चे, युवक, वृद्ध सबसे अत्यन्त प्रेम करते थे। उनसे एक बार जो भी मिला है, वह उनके स्नेहिल व्यवहार को कभी भूल नहीं सकता। महराजजी दीर्घकाल तक 'विवेक ज्योति' के प्रधान सम्पादक थे। 'विवेक ज्योति' में हमेशा उनके लेख कई वर्षों से प्रकाशित होते चले आ रहे हैं। विवेक ज्योति का विकसित रूप उनकी ही प्रेरणा है। २७ फरवरी, २०२२ को ८८ वर्ष की आयु में एम.एम.आई अस्पताल, रायपुर में वे इस नश्वर संसार को छोड़कर चले गये, जो समाज और संघ के लिये अपूरणीय क्षति है। उनका अन्तिम संस्कार राजकीय सम्मान के साथ महादेव घाट, रायपुर में किया गया। मुख्यमन्त्री, पूर्वमुख्यमन्त्री, अन्य मंत्रियों, गणमान्य लोगों और सन्तों ने अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। ○○○

रामकृष्ण मिशन के केन्द्रों द्वारा विविध कार्यक्रम आयोजित हुए

१४ मार्च को एकाम्बरेश्वर शिव मन्दिर की रथयात्रा के उपलक्ष्य में काँचीपुरम् मठ के द्वारा ३००० लोगों में छाछ वितरण किया गया।

रामकृष्ण मठ और मिशन, कामारपुकुर में जनवरी, २०२२ को २९३ नेत्र-रोगियों की जाँच और ५४ की शल्य चिकित्सा की गयी एवं ७८ रोगियों को चश्में वितरित किये गये।

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन आश्रम, मेदनीपुर में २४ दिसम्बर, २०२१ को पश्चिम केसपुर ब्लाक में चिकित्सा शिविर में ८५७ रोगियों की चिकित्सा हुई। **रामकृष्ण मठ, नौरा** द्वारा ३ एवं २२ जनवरी, २०२२ के दो नेत्र शिविरों में आयोजित ८७ रोगियों की चिकित्सा हुई।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, सेलम द्वारा आयोजित जनवरी, २०२२ के नेत्र-शिविर में २०० रोगियों की जाँच, ५८ की शल्य चिकित्सा हुई एवं ५३ को चश्में प्रदान किये गये। **रामकृष्ण मठ, तंजौर** ने १ जनवरी, २०२२ को स्वास्थ्य जागरूकता कार्यक्रम का आयोजन किया, जिसमें ३५ लोगों ने भाग लिया।

रामकृष्ण मठ और मिशन विवेकानन्द मेमोरियल, वडोदरा – द्वारा दिसम्बर-२०२१ एवं जनवरी-२०२२ में गुजरात के छोटा उदयपुर जिले के तीन गाँवों में तीन नेत्र शिविर का आयोजन किया गया, जिसमें ५६१ रोगियों की चिकित्सा की गई एवं १०५ रोगियों की कैटेरेक्ट शल्य चिकित्सा की गयी।

नैतिक शिक्षा और युवा कार्यक्रम

बसावनगुड़ी (बेंगलुरु) मठ द्वारा २७ मार्च, २०२२ को युवाओं के लिये कार्यशाला का आयोजन किया गया, जिसे कुछ वरिष्ठ सैन्य अधिकारियों ने सम्बोधित किया। इसमें महाविद्यालय के १५० छात्रों और शिक्षकों ने भाग लिया।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, बेलगावी ने ५ फरवरी, से ९ मार्च, २०२२ तक बेलगावी जिले के निकटवर्ती क्षेत्रों में १३ आदर्श शिक्षा कार्यक्रम आयोजित किये, जिसमें कुल १३९२ छात्रों ने भाग लिया। केन्द्र द्वारा १० और ११ मार्च को युवा सम्मेलन और शिक्षक सम्मेलन का आयोजन किया गया, जिसमें महाविद्यालय के ११०० छात्रों और ७५० शिक्षकों ने भाग लिया।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, मोराबादी, राँची ने ११ और १५ मार्च को दो युवा शिविरों का आयोजन किया, जिसमें कुल ४८३ छात्रों ने भाग लिया।

विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर के मानव प्रकर्ष संस्थान में श्रीरामजन्मोत्सव कार्यक्रम आयोजित हुआ

९ अप्रैल, २०२२ को अपराह्न ३ बजे विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा रायपुर द्वारा संचालित विवेकानन्द मानव प्रकर्ष संस्थान के तत्त्वावधान में श्रीराम-जन्मोत्सव-कार्यक्रम का आयोजन हुआ, जिसमें 'भारतीय संस्कृति पर श्रीराम का प्रभाव' विषय पर विभिन्न वक्ताओं ने अपने विचार व्यक्त किये। इस सभा की अध्यक्षता रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के प्रभारी स्वामी अव्ययात्मानन्द जी महाराज ने की। विवेकानन्द विद्यापीठ के सचिव डॉ. ओमप्रकाश वर्मा जी ने 'लोक कल्याण और राजनीति के क्षेत्र में श्रीराम' विषय का सुन्दर प्रतिपादन किया। शासकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रायपुर की हिन्दी विभाग की सहा. प्राध्यापिका डॉ. कल्पना मिश्रा ने 'साहित्य और कला तथा संगीत के क्षेत्र में श्रीराम' पर सारगर्भित और सस्वर गायन के साथ सरस व्याख्यान दिया। स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने 'धर्म के क्षेत्र में श्रीराम' पर व्याख्यान दिया। उद्बोधन संगीत विद्यापीठ के संगीत शिक्षक श्री रवीश कालगांवकर ने प्रस्तुत किया। अतिथियों का स्वागत बी.एड. विभाग की प्राचार्या श्रीमती रश्मी पटेल और धन्यवाद ज्ञापन विवेकानन्द विद्यालय के प्राचार्य एच. डी. प्रसाद जी ने किया। ○○○